मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

रोज़े का वास्तविक उद्देश्य

''रोज़े में जब वे चीज़ें भी मना हो जाती हैं जो रमज़ान के अतिरिक्त हमेशा से पाक व पवित्र हैं, तथा रोज़े के बाद हमेशा पाक व पवित्र रहेंगी तो वे चीज़ें कैसे मना नहीं होंगी जो रोज़े से पहले हराम व निषेध तथा मना थीं और रोज़े के बाद भी हराम व निषेध तथा मना होंगी, अर्थात पीठ पीछे किसी की बुराई, लड़ाई–झगड़ा, गाली–गलौज, निलर्ज्जता, झूठ इत्यादि। रोज़े का उद्देश्य यह है कि हर प्रकार के गुनाहों से दूर रहा जाये तथा उनसे घृणा की जाये तथा रोज़े के समय उनसे पूर्ण रूप से बचा जाये। यदि केवल न खाने–पीने का रोज़ा रहा और तक़वा (इंद्रियों पर निग्रह व संयम) न उत्पन्न हुआ तो रोज़ा निरर्थक है। वह केवल ढांचा है। उसमें आत्मा नहीं है।''

हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी (रह०)

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल नदवी
दारे अरफ़ात, तकिया कलां, रायबरेली

MAY - JUNE 18

₹ 10/-

शौक़-ए-आख़िरत

मौत के समय मोमिन का सम्मान

हज़रत बराअ इब्ने आज़िब (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी करीम (स०अ०) ने फ़रमाया:

"जब मोमिन दुनिया से रुख़्सत और आख़िरत की आमद की हालत में होता है तो उसके आस–पास आसमान से फ़रिश्ते आते हैं। जिनके चेहरे आफ़्ताब (सूरज) की तरह रोशन होते हैं। जिनके पास जन्नत के कफ़न होते हैं (कफ़न के लफ़्ज़ से लोगों को दहशत न हो यह जन्नत के लिबास होते हैं, हर तरह से दिलकश व लुभावने) और जन्नत की ख़ुशबुएं होती हैं। यहां तक कि वह उस हाज़िर किये गये मोमिन की नज़र से फ़ासिले पर बैठ जाते हैं।"

इससे पहले मोमिन की आख़िरत की रवानगी का जो बयान शुरू हुआ था वह अब नये सिरे से शुरू होता है:

"अब मौत के फ़रिश्ते आदमी के सर के क़रीब आ जाते हैं और उससे कहते हैं: ऐ जान: जिसको इत्मिनान था ख़ुदा के हुक्मों पर, चल अल्लाह की मग़्फ़िरत और रज़ामन्दी की तरफ़। उस पर जान इस आसानी से बाहर निकलती है जैसे मश्क से पानी की बूंद से ढुलक आती है, चाहे तुम ज़ाहिरी हालत उसके ख़िलाफ़ देखो।"

यह आख़िरी हिस्सा बहुत ही अहम और अर्थपूर्ण है। आख़िरी वक़्त जिस्म पर जो कैफ़ियत दिखाई देती है, हुज़ूर (स०अ०) का इरशाद उन्हीं चीज़ों की तरफ़ है और इरशाद हो रहा है कि:

''एतबार के क़ाबिल जिस्म की हालत नहीं रूह की हालत है।''

फिर अगर मसरूर व शादां हैं (प्रसन्नचित) जो जिस्म की हो हालत नज़र अंदाज़ करो। मोमिन की रूह पर तो यह ख़ास वक़्त रहमत के नाज़िल होने का होता है।

''और फ़रिश्ते (उस आसमान के) रूह के निकालने के बाद उसे मल्कुल मौत के हाथ में लम्हे भर के लिये भी नहीं छोड़ते, बल्कि उसे जन्नती कफ़न और ख़ुशबू में रख देते हैं और उसमें से ऐसी ख़ुशबू निकलती है जैसी नफ़ीस से नफ़ीस मुश्क (इत्र) से निकलती है और वे उसे लेकर ज़मीन से ऊपर को चढ़ते हैं तो फ़रिश्तों के जिस गिरोह पर भी उनका गुज़र होता है तो पूछते हैं कि पाकीज़ा रूह कौन है? तो वे उसके अच्छे से अच्छे नाम से जो दुनिया में मशहूर था, बतलाते हैं कि फ़लां का बेटा फ़लां हैं। (इस अच्छी हालत के साथ) वे उस रूह को ले जाते हैं। क़रीब वाले आसमान (यानि दुनिया के आसमान) तक और फिर वहां से गुज़रते हुए ले जाते हैं उसे (इन्तिहाई बुलन्दी यानि) सातवें आसमान तक। अब अल्लाह तआला का इरशाद होता है कि इसका नाम लिख दो इल्लियीन में और फिर उसे सवाले क़ब्र के लिये ज़मीन पर ले जाते हैं। उसकी रूह फिर जिस्म की तरफ़ लौटाई जाती है। आलमे बरज़ख़ के मुतनासिब अब उसके पास दो फ़रिश्ते आते हैं और वे मैय्यत को बिठा देते हैं।''

और ज़ाहिर है कि असीमित दूरी के सफ़र में मोमिन को न किसी क़िस्म का ताब होगा, न थकान, बल्कि सर ता सर लुत्फ़, फ़रहत व प्रसन्नता ही हासिल होगी। सफ़र की मुद्दत इस हैरतअंगेज़ उल्लास से ख़त्म हो जायेगी कि उसके सामने रॉकेटों की हवाई उड़ान भी गर्द होकर रहेगी।

मौलाना अब्दुल माजिद दरियाबादी (रह०)

بسم الله الرحمن الرحيم

मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

अंक:७-६ | मई-जून २०१८ ई० | वर्ष:१०

संरक्षक

हज़रत मौलाना
सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी
(अध्यक्ष - दारे अरफ़ात)

निरीक्षक

मौ० वाज़ेह रशीद हसनी नदवी
जनरल सेकेरेट्ररी- दारे अरफ़ात

सम्पादक

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

सम्पादकीय मण्डल

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी
अब्दुस्सुबहान नारवुदा नदवी
महमूद हसन हसनी नदवी

सह सम्पादक

मो० नफ़ीस ख़ॉ नदवी

अनुवादक

मोहम्मद सैफ़

मुद्रक

मो० हसन नदवी

इस अंक में:

मुहम्मद–ए–अरबी से आलम–ए–अरबी.....२
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी
रमज़ानुल मुबारक तक़्वे का मिज़ाज बनाने के लिये है.....३
हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी रह०
किताब–ए–इलाही के तक़ाज़े.....५
हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी हसनी नदवी
रोज़े का तक़ाज़ा.....७
मौलाना अब्दुल्लाह हसनी नदवी रह०
एकेश्वरवाद क्या है?.....९
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी
जुर्म के रोकथाम की कोशिशें क्यों और कैसे.....११
मौलाना ख़ालिद सैफ़ुल्लाह रहमानी
रोज़े की हक़ीक़त.....१३
अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी
रोज़े के जिस्मानी और रूहानी फ़ायदे.....१५
हकीम क़ाज़ी ख़ालिद
रोज़े की कुछ अनिवार्यताएं एवं.....१९
ज़कात के फ़ज़ाएल व मसाएल.....२३
मुफ़्ती सादिक़ हुसैन क़ासमी
एतिकाफ़.....२६
न्यायपॉलिका के शरीअत विरोधी फ़ैसले.....२८
सैय्यद मुहम्मद अमीन हसनी नदवी
शुक्र–ए–इलाही.....३०
मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी
इबादत में संतुलन आवश्यक है.....३१
मुहम्मद नफ़ीस ख़ाँ नदवी

E-Mail: markazulimam@gmail.com

www.abulhasanalinadwi.org

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल–नदवी दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली,य०पी०.229001

प्रति अंक 10रू

मो० हसन नदवी ने एस० ए० आफसेट प्रिन्टर्स, मस्जिद के पीछे, फाटक अब्दुल्ला खॉ, सब्ज़ी मण्डी, स्टेशन रोड रायबरेली से छपवाकर आफिस अरफ़ात किरण,मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल–नदवी, दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली से प्रकाशित किया।

वार्षिक 100रू०

सम्पादकीय

मुहम्मदे अरबी से है आलमे अरबी

● बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

हिजाज़–ए–मुक़द्दस आलम–ए–इस्लाम का दिल है। वह मुसलमानों का काबा है। हर मुसलमान वहां से जज़्बाती लगाव रखता है, और क्यों न हो वहीं मक्का है और वहीं मदीना है। जहां का चप्पा–चप्पा चाहने वालों की आंख का सुरमा है। वहीं से दुनिया को दीन की दौलत मिली। इन्सानियत की नेमत मिली। सच्ची ज़िन्दगी का रास्ता मिला। आज भी मुसलमान वहां की पाक सरज़मीन को उसी नज़र से देखता है। सऊदी हुकूमत से पहले वहां की बदअमनी और बेइत्मिनानी की हालत को हर लेखक जानता है। इसमें कोई शक नहीं कि सऊदी हुकूमत आने के बाद हालात बदले। वहां अमन व अमान क़ायम हुआ। बिदआत व खुराफ़ात का ख़ात्मा हुआ। शरीअत को दस्तूर–ए–मुमलकत (देश का संविधान) क़रार दिया गया। लेकिन तेल के निकलने के बाद से दौलत की फ़रावानी ने एक तरफ़ राहत व आराम का सामान किया तो दूसरी तरफ़ ऐश व इशरत का मिज़ाज बनाया और फिर मग़रिबी तहज़ीब ने धीरे–धीरे बाल व पर निकालने शुरू किये और फिर इतनी तेज़ी के साथ उसका सैलाब आया कि अरबी लिबास में दिमाग़ मग़रिबी बन गये। उस वक़्त अस्हाब–ए–फ़िक्र व दावत ने कोशिशें शुरू कीं, जिनमें मुफ़िक्कर–ए–इस्लाम हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी (रह0) का नाम नुमायां है। अल्लाह तआला को बड़ा एहसास और दर्दमंद दिल दिया था। अरबों से मौलाना को बड़ी गहरी वाबस्तगी थी और मौलाना को उसी बुलन्द मक़ाम पर देखना चाहते थे जो अल्लाह ने इस्लाम से वाबस्तगी की बुनियाद पर अता किया था। हिजाज़–ए–मुक़द्दस के सफ़रों का आग़ाज़ हुआ तो मौलाना ने वहां अपने दावती मिशन का भी आग़ाज़ किया और ख़ास तौर पर अस्हाब–ए–इक़्तिदार को मौलाना ने तवज्जो दिलायी।

मलिक सऊद से लेकर मलिक फ़हद तक मौलाना सबसे मिले। खत लिखे और उनको ख़तरों से आगाह किया। हज़रत मौलाना ने हर जगह यह बात कही कि अरबों का इम्तियाज़ दीन से लगाव में है। मौलाना ने बड़े जोश से उनको मुख़ातिब करते हुए फ़रमाया कि मुहम्मद अरबी (स0अ0) से पहले भी तुम कुछ न थे और अगर तुम हुज़ूर (स0अ0) की ज़ात–ए–अक़दस से बेवफ़ाई की तो तुम बेहक़ीक़त हो जाओगे। तुम्हारा इम्तियाज़ ख़त्म हो जायेगा। हर अरब मुल्क में मौलाना ने यही सूर फूंका और उस वक़्त मौलाना तवज्जो दहानी का बड़ा असर पड़ा और हालात थम गये।

मलिक फ़ैसल मरहूम ख़ास तौर पर मौलाना के बड़े क़दर दान और मौलाना के इख़्लास व ज़हद व ख़ैरख़्वाही के बड़े मुतआरिफ़ थे और मौलाना की नसीहतों का उनकी ज़िन्दगी पर बड़ा असर पड़ा लेकिन अमरीका की पकड़ बढ़ती चली गयी। मलिक फ़ैसल मरहूम को शहीद करा दिया गया और आगे के शासको ने कुछ ज़्यादा ही एहतियात की पॉलिसी अपनायी। फिर भी कुछ क़दरें बाक़ी रहीं। उलमा का एहतराम बाक़ी रहा। दीन की पासदारी होती रही। इसलिए कि कहने वाले बाक़ी थे। वह कहने वाले जो बड़े हकीम और हक़ीक़त शनास थे। जिनका काम सिर्फ़ आलोचना कर देना नहीं था। उनकी ज़बान अम्बिया (अलैहिस्सलाम) की ज़बान की तरजुमान थी "और मैं तुम्हारा मोतबर ख़ैरख़्वाह हूं।" उनकी ख़ैरख़्वाहाना बातचीत का बड़ा असर पड़ता था और दीन की कुछ न कुछ पासदारी भी बाक़ी थी।

आज के हालात इन्तिहाई फ़िक्रमन्द और दुआ के हैं। मौजूदा इक़्तिदार ने वह हद भी पार कर दिये जिनका लिहाज़ अब तक क़ायम था। अहले दीन और अहल–ए–इक़्तिदार में दूरियां बढ़ती जा रही हैं जो बड़े ख़तरे की बात है। ज़रूरत इसकी थी कि बात दर्द व फ़िक्र के साथ पहुंचती। ख़ैरख़्वाहाना उसलूब में पहुंचती तो शायद दूरियां कम होंती और मुमकिन था कि हालात फिर बदलते, आलमी ताक़तों की निगाहें इस मुबारक सरज़मीन पर हैं जो मुसलमानों के लिये मलजा व मावा हैं। काश कि उसी दर्द व फ़िक्र और हक़ीक़त शिनासी के साथ हमारे उलमा फिर उन अहले इक़्तिदार से मुख़ातिब हों और उनको ख़तरों से आगाह करें और कोई कहने वाला फिर यह कहे कि अगर तुम्हें मज़बूत और मुस्तहकम इक़्तिदार चाहिये तो इसका भी रास्ता भी यही है कि तुम दीन से वाबस्तगी मज़बूत करो। मुहम्मदे अरबी से सच्ची वफ़ादारी का सुबूत दो और उस निस्बत की लाज रखो। मुसलमानों के दिल तुम्हारे साथ होंगे।

रमज़ानुल मुबारक तक़्वे का मिज़ाज बनाने के लिये है

मुफ़क्किरे इस्लाम हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी

शुक्र करने पर नेमतें ज़्यादा मिलती हैं: सबसे पहले मैं आप लोगों को मुबारकबाद देता हूं कि आप हज़रात को खुदा ने यह तौफ़ीक़ दी। इसका सबसे ज़्यादा शुक्र अदा करना चाहिये। अल्लाह तआला शुक्र पर बेइन्तिहा दौलतों से नवाज़ते हैं और कुरआन इन तमाम तज़किरों से भरा हुआ है। आप लोग इस बात को बहुत अच्छी तरह से जानते हैं। अल्लाह तआला की ज़ात बेनियाज़ है। उसकी मुबारक सिफ़ात में से एक सिफ़त और नाम "शकूर" भी है। कि शुक्र पर अल्लाह तआला के यहां से नेमतों की ज़्यादती होती है और नाशुक्री पर नेमत छीन लिये जाने का ख़तरा होता है। इन बातों से आप लोग अनजान न होंगे। लेकिन तज़किरे के लिये यह बात बयान कर दी। हमें ज़बानी शुक्र व अमली व दिली शुक्र, और जिस तरह से हो सके खुदा का शुक्र अदा करना चाहिये।

इस शुक्र का तक़ाज़ा यह है कि हमारा ध्यान बीच में आने वाली परेशानियों और कठिनाइयों की तरफ़ न जाये। इसलिए जब बड़ी नेमत होती है तो फिर इन्सान का ध्यान बीच में आने वाली मुसीबतों की तरफ़ नहीं जाता। इसीलिए जब कोई बादशाह के पास जाता है तो बादशाह से मिलने की खुशी में दरमियान में आने वाली मुसीबतों की तरफ़ नहीं देखता। और वह मुसीबत उसे कुछ मालूम नहीं होती। अगर इस सफ़र में उसकी कोई तज़लील करे जिसे वह बर्दाश्त नहीं कर सकता था, लेकिन वह उसे भी बर्दाश्त कर लेता है। क्योंकि उसके सामने मंज़र होता है बादशाह के दरबार का और बादशाह से मिलने का और बादशाह से मुस्करा कर बात करने का।

जब इन्सान सफ़र का इरादा करता है तो वह सफ़र की नालियों और गड्ढ़ों और पहाड़ों की ओर ध्यान नहीं देता। इसलिए उसे अस्ल सफ़र की तरफ़ ध्यान होता है। तो जब खुदा ने आप हज़रात को ऐसी मुबारक महफ़िल में आने की तौफ़ीक़ दी जिसमें हाज़िर होने वाला भी महरूम नहीं रहता, आख़िरी सफ़ में बैठने वाला भी ख़ाली नहीं जाता है। जिस तरह रहमत के झोंके चलते हैं तो उस वक़्त एक बादे बहारी का झोंका चलता है। होशियार रहना चाहिये कि जब रहमत का झोंका चले तो ग़ाफ़िल न रहें। बहरहाल इसमें कोई शक नहीं है कि जिस जगह पर आप हैं अगर यहां से आप सोते हुए भी गुज़र जाये तब भी रहमत से ख़ाली न होंगे। तो ऐसे वक़्त और मुबारक मौक़े पर आने वाली नागवारियों पर आप लोग शिकायत का कोई हर्फ़ न ज़बान पर और न दिल पर लायें, हमारे पास है ही क्या?गुनाहों के अंबार है, अब इस बड़ी नेमत के वक़्त न आयी हुई मुसीबत को ध्यान में लायें और न ही बाद में आने वाली मुसीबतों पर कोई ध्यान दें। इसलिए ज़रूरी है कि हमारी ज़बान हर वक़्त हम्द में लगी हुई हो और हम अपने काम से, दिल से तथा हर मुमकिन तरीक़े से अल्लाह का शुक्र अदा करें।

मुबारक घड़ियां और दिनः इस वक़्त मुझे एक बात यह अर्ज़ करनी है कि खुदा की तरफ़ से एक मौक़ा और एक दिन ऐसा दिया जाता है जिसका साया बड़ा होता है। जिसक साये आतिफ़त में रहने वाले बाहर के हर ख़तरे से महफ़ूज़ रह सकते हैं। कुछ घड़ियां दिन में ऐसी हैं, जिसका साया पूरे दिन पर पड़ता है। हफ़्ते में जुमा का दिन ऐसा मुबारक है, जिसका साया पूरे हफ़्ते पर पड़ता है और महीने में कुछ दिन ऐसे हैं जिनका साया पूरे महीने पर पड़ता है और साल में रमज़ान का महीना ऐसा है जिसका साया पूरे साल पर पड़ता है और हज का साया ऐसा है जिसका साया पूरी ज़िन्दगी पर पड़ता है। अगर साल के और उम्र के और हफ़्ते के मुबारक दिनों के साये में रहने वालों में कोई ख़ता व लग़्ज़िश हो जाती है तो वह भी दरगुज़र कर दी जाती है तो इस सामयाने के लिये ज़रूरी है कि ऐसा मज़बूत और ऐसा वसीअ होना चाहिये जिसका साया घना हो। जिस पर अगर ओले पड़े या उस पर पत्थर गिरें तब भी उस शामयाने के टूटने का ख़तरा न हो। अगर यह रमज़ान अच्छा हो जायेगा तो फिर हर माह सलाह व इबादत है। और खुदा के हुक्म की इत्तेबा के साथ गुज़रेगा। इसलिए चाहे क़ाबू से बाहर कर देने वाले हालात हों या दीन से हटा देने वाली चीज़ें हों, लेकिन इसके बावजूद हम हटने न पायें, ऐसा रमज़ान का साया–ए–आतिफ़त होना चाहिये।

इसके लिए हमें रमज़ान को इस तरह गुज़ारना चाहिये कि यह हमारे मिज़ाज को बदल दे। जैसा कि कुरआन में फ़रमाया गया है: "लअल्लकुम तत्तकून" देखने में यह छोटी बात है और अगर बोला जाये तो भी यह छोटा कलिमा है। वरना तो कुरआन का छोटा कलिमा भी मोजज़ा (ईश चमत्कार) है। तो इस आयत का मतलब यह नहीं है कि रमज़ान में तो तक़्वा है और अगर रमज़ान गया तो अब वह तक़्वा नहीं है।

तक़्वा मिज़ाज का नाम है: तक़्वा मिज़ाज का नाम है। तक़्वा इबादत का नाम नहीं है। इबादत और है तक़्वा और है। तक़्वा मिज़ाज का नाम है। इन्सान इबादत तो कर रहा है, लेकिन मामलात में और ग़ुस्से की हालत में और दुनियावी हालात में इन्सान की इबादत धरी की धरी रह जाती है। तो इसका नाम तक़्वा नहीं है।

इस पर एक क़िस्सा याद आया। आलमगीर बादशाह बड़े बुज़ुर्ग गुज़रे हैं। उन्होंने अपने वक़्त के बड़े–बड़े बुज़ुर्ग देखे थे। उनके पास आकर एक साहब ने अपने पीर की बड़ी तारीफ़ बयान की और जब उनसे मुलाक़ात और ज़ियारत की दरख़्वास्त की तो बादशाह ने एक बार उनसे मुलाक़ात का इरादा कर लिया, और कोतवाल को पास बुलाकर उसके कान में कुछ कर दिया। अब वह मुरीद क्या जाने शाही राज़ व नियाज़ को। वह मुरीद चला गया। और उसके पीर बादशाह के दरबार में हाज़िर हुए। बादशाह ने उन पीर साहब से कुछ तसव्वुफ़ के बारे में सवालात किये और पीर साहब ने उनके जवाबात देने शुरू किये। उस वक़्त पीर साहब पर उलूम व मआरिफ़ खुलने लगे और उन्होंने "वहदतुल वुजूद" और बहुत से विषयों पर बयान शुरू किया। बहुत देर तक बातचीत होती रही। मजलिस जमी हुई थी। ऐन उस वक़्त कोतवाल साहब ने आकर ख़बर दी कि जहां पनाह! ग़ज़ब हो गया। फ़लां ख़ान साहब को नूरबाफ़ों ने पीट डाला। यह पीर साहब भी ख़ान साहब थे। ख़ान साहब के पिटने की ख़बर सुनकर जज़्बे में आ गये और सारे मआरिफ़ छूट गये और कहने लगे: कौन कहता है कि वह ख़ान साहब हैं, अगर वह ख़ान साहब होते तो नूर बाफ़ों से न पिटते। तो ख़ान साहब के पिटने की ख़बर सुनकर पीर साहब को ग़ुस्सा आ गया जिससे बादशाह समझ गये कि इल्म है, इबादत है, लेकिन मिज़ाज नहीं है। तो यहां भी पीर साहब का मिज़ाज न था।

बिल्ली को चाहे जिनता सधाया जाये और उसकी चाहे जितनी तरबियत की जाये लेकिन अगर चूहा सामने आ जाये तो फिर वह कुछ नहीं देखती। उसका जज़्बा तरबियत पर ग़ालिब आकर रहता है। चार–पांच साल की उस पर की गयी मेहनत बेकार हो जाती है। तो रमज़ान का भी यह मतलब नहीं है कि इस वक़्त तो ख़ामोशी भी है और इबादत और ज़िक्र व तिलावत भी और सारी अच्छाई भी, लेकिन जहां रमज़ान गया फिर वही पहले ही जैसा हाल हो गया।

हज़रत मौलाना अब्दुल क़ादिर साहब देहलवी (रह0) ने "तक़्वे" के माने "लिहाज़" से किये। मेरे इल्म के मुताबिक़ सौ–दो सौ साल के अर्से के दरमियान ऐसा तर्जुमा नहीं हुआ। हज़रत मौलाना अब्दुल क़ादिर साहब देहलवी ने जितना बेहतरीन उर्दू ज़बान में कुरआन का तर्जुमा किया है वैसा उर्दू के अलावा ग़ैर अरबी ज़बान में तर्जुमा कभी नहीं हुआ और बाज़ बुज़ुर्गों ने इस तर्जुमे को इल्हामी तर्जुमा कह दिया है। तो उन्होंने तक़्वे का तर्जुमा लिहाज़ से किया है। लिहाज़ वक़्ती जज़्बात को नहीं कहते हैं, बल्कि हमेशा ख़्याल करने को कहते हैं।

अगर किसी को किसी की वक़्ती अज़मत है। मसलन हाकिम की अज़मत या बेटे की बड़ाई का ख़्याल है तो उसे भी लिहाज़ रहेगा, हर वक़्त और हर हालत में। अगर किसी पत्थर पर पानी की बूंद लगातार पड़ती रहे तो उसमें भी गढ़ा हो जाता है। यह गढ़ा होना ही पत्थर का लिहाज़ है। तो यह लिहाज़ हमारे अन्दर आ जाये। इस तरह हमें इस रमज़ानुल मुबारक को गुज़ारना चाहिये। तो यह रमज़ान रहमत और मग़्फ़िरत और बरकत का साया और शामियाना है और यह ऐसा मज़बूत और वसीअ होना चाहिये कि पूरा साल उसकी मातहती में रहे। इस माहे मुबारक में बड़ी–बड़ी दुआएं कुबूल होंगी। इस माहे मुबारक में जो दुआ की जायेगी, और जो कुरआन की आयत ज़बान से निकलेगी और जो आंसू अल्लाह के दरबार में गिरेगें, उसका असर सिर्फ़ आप ही नहीं बल्कि आपके मुहल्ले और आपकी बस्ती और पूरी दुनिया महसूस करेगी।

किताब-ए-इलाही के तक़ाज़े

हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी

कुरआन मजीद से संबंध होना एक नेमत है और अल्लाह तआला की इस नेमत से फ़ायदा उठाना एक अच्छी बात है। इसलिए कि कुरआन मजीद अल्लाह का कलाम (ईशवाणी) है और प्रत्यक्ष रूप से अल्लाह का कलाम होने की वजह से उसकी ताक़त, उसकी विशेषता, उसका प्रभाव अत्यधिक है। इसका असर ऐसा है कि अगर यह सही असर के साथ संसार में प्रकट हो जाए तो दुनिया उसको बर्दाश्त नहीं कर सकती है। अल्लाह तआला ने इस बात को कई तरह के उदाहरणों से बताया, एक जगह बताया गया कि हमने इस कलाम को पहाड़ों पर उतारा होता तो पहाड़ इसका बोझ उठा नहीं सकते थे, बल्कि वे फट जाते, जल जाते, इसीलिए कुरआन मजीद में हज़रत मूसा अलै0 का उदाहरण भी दिया गया कि उन्होंने ईशप्रकाश की मांग की "ऐ परवरदिगार! हम आपको देखना चाहते हैं" तो कहा गयाः "हमारे प्रकाश को पहाड़ बर्दाश्त नहीं कर सकता, अगर कर लेगा तो तुम भी देख सकते हो" लेकिन जब ज़रा सा ईशप्रकाश आया तो तूर पहाड़ जल कर उस प्रकार बैठ गया जैसे उसको किसी ने दबा दिया हो और हज़रत मूसा अलै0 भी बेहोश हो गए और उस प्रकाश को न देख सके। तो यह किताब (आसमानी किताब) है, और यह ज़मीन आसमान नहीं है, ज़मीन ज़मीन है, आसमान आसमान है, इसीलिए आसमान को यह ज़मीन बर्दाश्त नहीं कर सकती, आसमान की जो ताक़त और वज़न है उसके सामने यह ज़मीन कोई हैसियत नहीं रखती, ज़मीन की हैसियत सूरज के सामने कुछ नहीं है, सूरज अपने फ़ासले से भी ज़मीन को तपा देता है और ज़मीन इसी के चारों ओर चक्कर काट रही है, वह भाग नहीं पाती, सूरज से बड़ी चीज़ भी आसमान की ताक़त के सामने कोई हैसियत नहीं रखती, इसलिए विचार करने योग्य बात यह है कि अल्लाह का कलाम जो एक प्रकाश व नूर की हैसियत रखता है इस ज़मीन पर कैसे आ सकता है?लेकिन उस अल्लाह तआला ने इनसानों पर यह करम फ़रमाया कि उनकी हिदायत और मार्गदर्शन के लिए अपने कलाम को ज़मीन पर भेजा और वह व्यवस्था कर दी जिसके कारण से यह कलाम ज़मीन पर रह सके और लोग इसको पढ़ सकें, वरना यह कलाम यदि अपनी इसी ताक़त के साथ हो यानि उस कैफ़ियत के साथ हो जो उसकी वास्तविक स्थिति है तो उसको आदमी अपनी ज़बान से अदा नहीं कर सकेगा और उसको सुन नहीं सकेगा, कान बर्दाश्त नहीं कर सकेंगे, बल्कि उसका नूर असर डालेगा, इसीलिए अल्लाह तआला ने फ़रमाया कि "अगर हम इसको पहाड़ों पर नाज़िल करते तो पहाड़ फट जाते, लेकिन इनसान के लिए हमने उसको उतार दिया, ताकि इनसान उससे फ़ायदा उठाएं" और इनसान के फ़ायदे के लिए अल्लाह ने उस चीज़ को ऐसा कर दिया है कि यहां ज़मीन पर वह रह सके, और उसकी मिसाल ऐसी है जैसे बिजली का करेन्ट होता है जो तार से गुज़रता है उसके ऊपर रबड़ चढ़ी होती है, अगर उसको कोई पकड़ ले, उसको इस्तेमाल करे, तो उससे रोशनी हासिल होगी, उससे इंजन चलाया जा सकता है, लेकिन अगर कोई उसी खुले तार को छू ले तो उस करेन्ट के लगने से ज़िन्दा नहीं बचेगा और अगर इनसान वही करेन्ट अप्रत्यक्ष रूप से छूता है तो उसको बर्दाश्त कर लेता है। इसी तरह कुरआन मजीद का उदाहरण है कि अल्लाह तआला ने इस कलाम (ईशवाणी) को ऐसा आत्मिक खोल प्रदान किया है कि यह हमारे कानों में जाता है, हमारे मुंह से भी अदा होता है, इसको हम क़ाग़ज़ पर भी ले लेते हैं, इसको उठाते हैं, वरना यदि यह ग़िलाफ़ इसमें इस तरह न हो जिस तरह अल्लाह तआला ने हमारे फ़ायदे के लिए इसको रखा है, तो यह कलाम इस दुनिया में उतर नहीं सकता, दुनिया उसको झेल नहीं सकती, बल्कि दुनिया फट जाएगी, टूट जाएगी, मानो यह अल्लाह का ऐसा करम है कि वह चीज़ जिसको हम बर्दाश्त नहीं कर सकते वह हमको दी, जो चीज़ यहां रह नहीं सकती थी अल्लाह ने उसको उतारा, ताकि हम उससे फ़ायदा उठाएं, तो इतनी बड़ी दौलत व नेमत अल्लाह ने हमको दी है जो हमको सामान्य अवस्था में नहीं मिल सकती थी अतः उसका सम्मान करने की आवश्यकता है। मनुष्य उसका जितना सम्मान करे वह कम है।

कुरआन मजीद का सम्मान यह है किः "शायद वे समझ सकें, विचार कर सकें।" यानि बन्दे यह समझ सकें कि अल्लाह तआला का स्थान क्या है?और अल्लाह

तआला के सामने बन्दों की क्या हैसियत है, और उन पर क्या ज़िम्मेदारी आती है? कुरआन मजीद में अल्लाह तआला इनसानों को ध्यान दिलात है कि तुम्हें कैसा जीवन बिताना चाहिए?तुम्हारे कर्म कैसे होने चाहिए?तुम्हारा क्या तरीक़ा होना चाहिए?तुम्हारे दिल के अन्दर क्या कैफ़ियत होनी चाहिए?इसलिए कि अल्लाह तआला ने इनसानों पर बहुत अधिक उपकार किए हैं। यह संसार हमारे लिए बनाया, हमारे लिए ही सूरज का निर्माण किया, चांद को हमारे लिए लाभदायक बनाया, इसी तरह ज़मीन में जो कुछ होता है और पाया जाता है वह सब अल्लाह ने हमारे फ़ायदे के लिए ही रखा है कि हम उससे फ़ायदा उठाएं। संक्षेप में यह कि हर प्रकार के उपकार जिनकी हमको जीवन में आवश्यकता होती है, वह सब अल्लाह ने हमको उपलब्ध करा दीं। इसीलिए इन सब चीज़ों को देने के बाद वह चाहता है कि बन्दे उसकी बात को माने और अपने परवरदिगार के सामने अपने को बन्दा बना कर रखें, अपने परवरदिगार का मुक़ाबला न करने लगें, यानि अपने को अपने परवरदिगार के बराबर न समझने लगें। वह इस प्रकार कि अपने इच्छानुसार कर्म करें, अल्लाह के आदेशों को अनदेखा कर दें या जिस प्रकार अपने साथी के साथ रवैया होता है उसी प्रकार रवैया अल्लाह तआला के साथ करें कि वह जो चाहता है कि करता है अल्लाह तआला जो कह रहा है वह नहीं करता यानि अपने को अल्लाह तआला के बराबर समझ रहा है या किसी और को अल्लाह तआला के बराबर समझ रहा है यह काम अल्लाह के निकट बहुत ही अप्रिय है। क्योंकि अल्लाह ही ने उसको सबकुछ दिया है यहां तक कि अपना कलाम उतार दिया जो कि उतर नहीं सकता था लेकिन अल्लाह ने उसको इसीलिए उतारा ताकि हम उससे सही राह पर आ सकें, इसलिए इस कलाम यानि कुरआन के मूल्य को समझना चाहिए और इसको जो अदब व स्थान है उस स्थान का सम्मान जैसा करना चाहिए वैसा ही आवश्यक है।

कुरआन मजीद का पहला अदब यह है जिसको ख़ुद कुरआन मजीद में ही बयान किया गया है: "इसको नहीं छूते मगर वे लोग जो पाकीज़ा होते हैं।" यूं तो इनसान पूर्ण रूप से पवित्र हो ही नहीं सकता इसलिए कि न जाने उसके पेट में न जाने क्या–क्या भरा हुआ है, लेकिन ज़ाहिरी तौर पर अल्लाह ने ऐसा तरीक़ा बताया कि यदि उसे अपना लिया जाए तो इनसान को पाक समझा जाएगा। अब हर इनसान की यह ज़िम्मेदारी होती है कि वह पाकी के तरीक़े को अपनाने के बाद अल्लाह का पाक कलाम पढ़े और अल्लाह का यह एहसान समझे कि उसने इस योग्य बना दिया कि एक नापाक इनसान अल्लाह के पाक कलाम से फ़ायदा उठा रहा है। उसी के साथ–साथ उसके सम्मान में भी किसी प्रकार की कोई कोताही न करे। कुरआन मजीद की क़दर जैसी हम कर सकते हैं हमको करनी चाहिए और इसके लिए जो बाते बतायी गयी हैं उनसे हमारे जीवन का जो मार्गदर्शन होता है उस मार्गदर्शन से हमको लाभ उठाना चाहिए, ऐसा करने से अल्लाह तआला खुश होता है क्योंकि इस कलाम के उतारे जाने का उद्देश्य ही यही था कि हम उससे फ़ायदा उठाएं और अपनी ज़िन्दगी को उससे संवारे, जब ऐसा करेंगे तो यह बात अल्लाह तआला की मर्ज़ी के अनुसार होगी और अल्लाह तआला को पसंद आएगी कि उसका बन्दा उसका कहा मान रहा है। उसके कहने पर चल रहा है। उसने जो हिदायत दी है उसको मान रहा है।

इतने वास्तो से कुरआन मजीद को केवल हमारे फ़ायदे के लिए उतारा गया ताकि हम उससे नसीहत प्राप्त करें। अपनी ज़िन्दगी को बनाएं और संवारें। क्योंकि अल्लाह के आदेशानुसार जीवन व्यतीत करने पर हम सही जीवन व्यतीत करने वाले होंगे और उसका परिणाम यह होगा कि हमको आसमानी ताक़त हासिल होगी जो कि हमें आख़िरत की ज़िन्दगी में काम देगी। हदीस शरीफ़ में आता है कि हमारा कोई काम ऐसा है कि जिससे वहां (जन्नत में) बाग़ लग जाता है। हमारा कोई काम ऐसा है जिससे वहां नहरें जारी होती हैं। हमारा कोई काम ऐसा है जिससे वहां महल बन जाते हैं। ज़ाहिर है कि हमें वहां उस तरह की कोई चीज़ मिलेगी वह हमारे लिए इस काम की वहज से मिलेगी?इससे मुराद वही काम है इससे मुराद वही कर्म है जिसको कुरआन मजीद में अल्लाह तआला ने अपने नबियों और अपने कलाम के द्वारा हमको बता दिया कि तुम यह करोगे तो तुमको फ़ायदा होगा, न ही कोई ऐसी चीज़ है जिससे तुम फ़ायदा उठा सकते हो, जैसे पत्थर होता है उस पर आप खड़े रहिये तो आपको न साया मिलेगा, न ही आपको राहत मिलेगी। इसी तरह वहां की व्यवस्था मिट्टी वाली व्यवस्था नहीं है, बल्कि वहां की व्यवस्था आत्मिक है जो कि हमारे कर्म के परिणाम में प्रकट होगी, यह सभी वे शिक्षाएं हैं जो अल्लाह तआला ने अपने नबियों के द्वारा मनुष्यों को बतायी हैं।

रोज़े का तक़ाज़ा

मौलाना अब्दुल्लाह हसनी नदवी रह०

अरबी भाषा में रोज़े के लिये "सौम" का शब्द है। अरबी ज़बान में ख़ास तौर पर यह शब्द घोड़ों के लिये इस्तेमाल होता था। दरअस्ल जिन घोड़ों को दौड़ के लिये ख़रीदा जाता था, उनका चारा कम कर दिया जाता था, और उनको दौड़ने के लिये तैयार करने की यह तरतीब होती थी कि पहले उन घोड़ों को किसी जगह बन्द करके रखा जाता था और उनकी गिज़ा कम कर दी जाती थी। फिर कम करते–करते बहुत कम कर दी जाती थी। यहां तक कि वह घोड़े दुबले हो जाते थे और फिर धीरे–धीरे उनकी गिज़ा बढ़ाई जाती थी, इसका नतीजा यह होता था कि वे मैदान में दौड़ने के लायक़ हो जाते थे। अरबी में इसी क़िस्म के घोड़ों को "अलफ़रसुल साइमा" कहते हैं यानि रोज़ेदार घोड़े। यह रोज़ेदार घोड़े दौड़ के मैदान में ग़ैर रोज़ेदार घोड़ों से आगे बढ़ जाते थे।

इसी तरह अल्लाह तआला ने उम्मत–ए–मुस्लिमा को रोज़े रखने का जो हुक्म दिया है, वह इसलिए है कि हम अपने ऊपर कुछ दिन कन्ट्रोल करें तो उसका नतीजा यह होगा कि हम खाने वालों से आगे बढ़ जायेंगे। जो हर वक़्त खा रहे हैं और हर वक़्त राहत व आराम की ज़िन्दगी बसर कर रहे हैं, अगर हम उनसे आगे बढ़ना चाहें तो हमको रोज़ा रखना होगा। रोज़ा रखने से हम डरने वाले बन जायेंगे, यानि अच्छे आमाल करने की हमारे अन्दर सलाहियत पैदा हो जायेगी, और हम अच्छे आमाल करने के लिये अपने अन्दर एक आमादगी पाने लगेंगे और अच्छे कामों में आगे बढ़कर हिस्सा लेने वाले बन जायेंगे और अगर हमने रोज़ा न रखा तो हमारे अन्दर सुस्ती, काहिली, अच्छे आमाल से बेरग़बती और उन लोगों से मुक़ाबला करने में घबराहट पैदा हो जायेगी जो अच्छे काम कर रहे हैं।

मुस्लिम उम्मत पर अल्लाह तआला ख़ास फ़ज़ल व इनाम है कि उसने रमज़ान का मुबारक महीना अता फ़रमाया और उसमें रोज़ों को फ़र्ज़ किया। अल्लाह तबारक व तआला ने इस उम्मत को यह महीना अपनी नेमत व रहमत और तोहफ़े के तौर पर अता फ़रमाया है। अल्लाह तआला का इरशाद है:

"ऐ लोगों जो ईमान लाये हो तुम पर रोज़े फ़र्ज़ किये गये, जिस तरह तुमसे पहले गुज़रे हुए लोगों पर किये गये थे ताकि तुम मुत्तक़ी बनो।" (सूरह बक़राः 183)

अल्लाह तआला ने कुरआन मजीद में फ़रमाया कि रोज़ा तक़्वे का ज़रिया है। यानि बातिन को बनाने और दिल को सही करने का सबसे बड़ा ज़रिया है। अल्लाह तआला ने तक़्वे का ताल्लुक़ अन्दर से रखा है। अगर हम अपने अन्दर को ठीक कर लें तो हम तक़्वा वाले बन जायेंगे। लेकिन हम लोगों ने जहां बहुत से अल्फ़ाज़ के ग़लत माने समझ रखे हैं, या ग़लत मानी ले लिये हैं, उन्हीं में से एक शब्द तक़्वा भी है। हम तक़्वे का मतलब समझते हैं कि फ़लां शख़्स बड़ा मुत्तक़ी है। इसलिए कि वह नमाज़ ज़्यादा पढ़ता है, ज़िक्र ज़्यादा करता है, जबकि हक़ीक़ी माने में ऐसा शख़्स मुत्तक़ी नहीं है, अस्ल में मुत्तक़ी शख़्स वह है जो अक़ीदे की इस्लाह के साथ शरई एहकाम का पाबन्द हो और उसका बातिन और दिल मुनव्वर हो।

अल्लाह तआला ने एक महीने के रोज़े की फ़र्ज़ियत का ऐलान करते यह भी कहा है कि रोज़े पिछली क़ौमों पर भी फ़र्ज़ किये गये थे, ताकि किसी को यह रोज़े बोझ न महसूस हों। इसीलिए रोज़े की फ़र्ज़ियत के बाद यह भी कहा गया है कि कुछ गिने–चुने दिन हैं, जिनमें रोज़ा फ़र्ज़ है। दरअस्ल नफ़्स की सरकशी और शैतान की दुश्मनी इतनी बढ़ी हुई है कि उसका मुक़ाबला करने के लिये एक महीने के रोज़े भी नाकाफ़ी हैं। अगर आप नफ़्स की सरकशी का मुताला करें और शैतान की दुश्मनी को देखें तो अंदाज़ा होगा कि उनके मुक़ाबले में उनसे बचने के लिये उतने दिन के रोज़े कम हैं। लेकिन अल्लाह तआला ने फ़रमाया कि यह रोज़े जो हमने तुमको दिये हैं यह गिने–चुने हैं, लेकिन उसका फ़ायदा इतना बड़ा है कि नफ़्स भी क़ाबू में आ जाता है, और शैतान भी मात खा जाता है।

रमज़ान का महीना अल्लाह तआला की बेशुमार रहमतों और बरकतों को लेकर आता है। रमज़ान आते ही ऊपर से रहमतें आनी शुरू हो जाती हैं, लेकिन जैसे ही बारिश होती है तो बाज़ ज़मीने ऐसी होती हैं कि उन पर पानी रुकता नहीं है और बाज़ ज़मीने ऐसी होती हैं जो जज़्ब कर लेती हैं। इसी तरह रमज़ान के महीने में अल्लाह की रहमतो और बरकतों की बारिश का मसला है यानि अगर हम ही ख़राब है तो हमे रमज़ान की रहमत की

बारिश से फ़ायदा ही नहीं होगा और अगर हमारे अन्दर जज़्ब की सलाहियत है तो उसका ग़ैर मामूली फ़ायदा हासिल होगा, लेकिन अगर हमारे दिल की ज़मीन सख़्त फ़र्श की तरह है, तो उस पर मेहनत की ज़रूरत है, ताकि नर्मी पैदा हो जाये और उसमें रहमत दाख़िल हो सके। जब ज़मीन नर्म हो जायेगी और रहमते इलाही के दुख़ूल का रास्ता हमवार हो जायेगा तो गोया इन्सान अल्लाह तआला की तरफ़ से मग़्फ़िरत का मुस्तहिक़ भी हो जायेगा। इसी लिये रमज़ान के पहले अशरे को रहमत बनाया और दूसरे अशरे को मग़्फ़िरत, और अगर इन्सान ने इस अशरे में भी अपने दिल की ज़मीन को नर्म करने की कोशिश जारी रखी तो तीसरे अशरे में उसको जहन्नम से ख़लासी ही का परवाना मिल जाता है। इसीलिए तीसरे अशरे को "जहन्नम से आज़ादी" का अशरा क़रार दिया गया है।

अफ़सोस की बात है कि हर साल रमज़ान हमारी ज़िन्दगी में आता है और रुख़्सत हो जाता है, लेकिन उसकी जो तासीर और फ़ायदा है, वह हमको हासिल नहीं होता है, उसकी बुनियादी वजह यह है कि जिस तरह हमको रोज़ा रखना चाहिये और जैसा कि उसका लिहाज़ होना चाहिये, हम वह नहीं रखते।

रोज़ा बातिन और बतन दोनों की इस्लाह करता है। बातिन से रूहानी निज़ाम ठीक होता है और बतन (पेट) से जिस्मानी निज़ाम ठीक होता है। लेकिन बातिन उस वक़्त ठीक होगा जब हम रोज़े के अन्दर मानवियत पैदा करें और बतन उस वक़्त ठीक होगा जब खाने–पीने में एहतियात रखें यानि रोज़ा खोलने के बाद इतना न खा लें कि फिर दूसरे दिन भूख ही न लगे और सहरी में इतना न चढ़ा जायें कि खट्टी डकार ही आती रहें। ऐसे में बतन भी ख़राब होगा और बातिन भी ख़राब हो जायेगा। इसलिए हर जगह एतदाल ज़रूरी है और इस उम्मत को चूंकि मोतदिल बनाया गया है, इसलिए उसको आमाल भी वैसे ही दिये गये हैं जिनकी बुनियाद एतदाल और तवाज़ुन पर है और अस्ल चीज़ जो इन्सान को बनाकर रखती है और उसको तरक़्क़ी के रास्ते पर लगाती है, वह उसका तवाज़ुन और उसके अन्दर एतदाल का होना है। अगर एतदाल और तवाज़ुन पाया जाये तो हर चीज़ मुफ़ीद होती है, वरना कोई चीज़ भी मुफ़ीद नहीं रहती।

रोज़ा हक़ीक़त में रुकने का नाम है। इसमें बहुत से चीज़ें छोड़ना है और उनसे रुक जाना है, जैसे– खाना नहीं है, पानी नहीं पीना है और ऐसा कोई ग़लत काम नहीं करना है जिससे रोज़ा टूट जाता है, लेकिन बहुत से ऐसे काम हैं जिनसे रोज़ा फ़तवे के एतबार से नहीं टूटेगा, अलबत्ता अगर मुत्तक़ी बनना है तो दिल से यह फ़तवा आयेगा कि रोज़ा टूट गया। जैसे अगर आप ग़ीबत करते हैं यानि दूसरे की बुराई करते हैं या बिला वजह बेकार की बातों में लगे हुए हैं। बिला वजह की मजलिसों में बैठे हैं और बातें ही करते चले जा रहे हैं, तो ऐसे में आपका रोज़ा हक़ीक़त में बाक़ी नहीं रहता। आज रोज़े का जो फ़ायदा नहीं हो रहा है, उसकी यही वजह है कि हम रोज़ा रखते ज़रूर हैं लेकिन ऐसे काम करते हैं जिससे कि रोज़े का फ़ायदा ख़त्म हो जाता है। रोज़े का जो नफ़ा है वह मिट जाता है। लिहाज़ा हम सबको यह तय करना चाहिये कि हम कोई ऐसा काम नहीं करेंगे जिससे रोज़ा जाता रहे और उसके फ़ायदे हमको हासिल न हों।

अगर इन्सान हक़ीक़ी माने में रोज़ेदार बनने की कोशिश करे तो उसका एक फ़ायदा यह होगा कि इन्सान का मिज़ाज तक़्वे के मुताबिक़ ढल जायेगा और उसके नतीजे में पहले मरहले पर शिर्क व कुफ़्र से, बिदआत व ख़ुराफ़ात से और दूसरी बहुत से बुराइयों से इन्सान बचने वाला बन जायेगा। गोया यह रोज़े का पहला फ़ायदा है।

और उसके बाद दूसरा मरहला यह है कि ऐसे शख़्स का हर काम सालेह मक़ासिद और अच्छी नियत के साथ अंजाम पायेगा। उसकी नज़र रज़ाए इलाही की अलावा किसी तरफ़ न जायेगी और दरअस्ल रोज़ा यही सिखाता भी है कि हम अच्छे काम करने वाले बन जायें। इसी का नाम तक़्वा है।

रमज़ान के महीने में हम यह तय कर लें कि आपस में फ़िज़ूल बातें नहीं करनी है। अल्लाह ने हमें जो ज़बान दी है, उसका ग़लत इस्तेमाल नहीं करना है। उसको मुबारक महीने में अल्लाह के ज़िक्र से तर रखना है और अगर यह मामूल बाक़ायदा नहीं हो सकता तो लेटे–बैठे ध्यान से "रब्बिग़ फ़िरली– रब्बिग़ फ़िरली" (ऐ अल्लाह मुझे माफ़ कर दे–ऐ अल्लाह मुझे माफ़ कर दे) यह विर्द दिल ही दिल में कहना है। दिमाग़ से सोचते रहना है, फिर धीरे–धीरे इसी में मज़ा आने लगेगा। यह हमारे दिमाग़ का एक अच्छा इलाज है और दिल के बुरे ज़ज़्बात की इस्लाह का इलाज भी यही है कि आदमी इधर–उधर की बातें न सोचे बल्कि जब बैठे तो यही ध्यान लगाये, इंशाअल्लाह इसका बड़ा फ़ायदा होगा।

क्रमवार:

एकेश्वरवाद क्या है?

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

नहूसत का विचार: हज़रत अबूहरैरा (रज़ि0) रिवायत करते हैं कि रसूलुल्लाह (स0अ0) ने इरशाद फ़रमाया: छुआ–छूत कोई चीज़ नहीं है। न परिन्दों से शगुन लेना ठीक है। न हामा का कोई वजूद है और न सफ़र के महीने में कोई नहूसत है। (बुख़ारी: 5757)

छुआ–छूत की काट: उपरोक्त विचार ज़माना जाहिलियत के अक़ीदे थे जिनकी आप (स0अ0) ने काट फ़रमायी और समाज से उन ख़राब अक़ीदों का सफ़ाया किया। लेकिन अफ़सोस की बात है कि आज भी इस तरह के ख़्यालात पाये जाते हैं। ऊपर दी गयी हदीस में पहली ख़बर जिसकी आप (स0अ0) ने काट की वह छुआ–छूत है। उस वक़्त यह आम विचार था कि अगर कहीं ऐसी जगह जायेंगे जहां कोई बीमारी है या इस तरह की कोई दूसरी चीज़ है तो वह चीज़ हमें भी ज़रूर हो जायेगी। आप (स0अ0) ने उन सभी चीज़ों से मना किया और ज़हन व दिमाग़ में यह अक़ीदा पेवस्त कर दिया कि जो कुछ होता है वह अल्लाह के करने से होता है। किसी के करने से कुछ नहीं होता और सारे ज़रिये अल्लाह तआला ही के पैदा किये हुए हैं। अगर ज़रिये में अल्लाह तआला तासीर डालते हैं तो ज़रिये काम करते हैं और अगर अल्लाह तबारक व तआला उन ज़रिये की तासीर छीन लेते हैं तो वही ज़रिये काम नहीं करते। आदमी एक दवा खाता है उसको फ़ायदा हो जाता है और वही दवा दूसरा आदमी खाता है उसको फ़ायदा नहीं होता है, मालूम हुआ कि दवा के अन्दर जो फ़ायदा है, वह उसके अन्दर ज़ाति तौर पर नहीं है, बल्कि वह अल्लाह तआला का दिया हुआ है। अल्लाह का हुक्म हुआ तो फ़ायदा होगा वरना फ़ायदा नहीं हो सकता।

हुवल शाफ़ी: हमारे दादा जान डॉक्टर सैय्यद अब्दुल अली रह0 एक अच्छे हकीम थे। उनके पास एक साहब दांत के दर्द की दवा लेने आये, दादा जान ने दवा दी लेकिन कोई फ़ायदा नहीं हुआ। ग़रज वह कई बार दवा ले गये लेकिन ज़र्रा बराबर भी फ़ायदा न हुआ। आख़िरकार दादाजान ने फ़रमाया: डॉक्टर अब्दुल क़य्यूम साहब अच्छे डॉक्टर हैं, तुम उनके पास जाओ और उनसे अपना इलाज कराओ। तो वह साहब वहां गये और उनसे दवा ली और माशा अल्लाह एक ही ख़ुराक़ में एकदम ठीक हो गये। फिर वह साहब दादा जान के पास आये और कहने लगे कि हम उनके पास गये और अल्हम्दुलिल्लाह उनकी एक ही ख़ुराक़ से फ़ायदा हो गया। दादाजान ने कहा: अगर उनका लिखा नुस्ख़ा मौजूद हो तो दिखाइये, चुनान्चे जब नुस्ख़ा देखा तो मालूम हुआ कि वही दवा उन्होंने ने भी लिखी थी जो दवा दादाजान मुस्तक़िल लिख रहे थे, लेकिन लिख–लिख कर थक गये और कोई फ़ायदा नहीं हुआ और उनके लिखने के बाद उसी ख़ुराक़ से एक ही बार में फ़ायदा हो गया। मानो अल्लाह तआला यह दिखाता है कि दवा के अन्दर अपने आप में शिफ़ा नहीं है, बल्कि अल्लाह तआला शिफ़ा देता है और जब चाहता है तब शिफ़ा देता है और जब चाहता है शिफ़ा नहीं देता है। इसीलिए ऐसा होता है कि कभी–कभी आदमी वही दवा खाता है शिफ़ा पाता है और वही दवा खाता है और उसका इन्तिक़ाल हो जाता है। इससे यह पता चलता है कि यह सब अल्लाह तआला के हाथ में है।

छुआछूत के रोग का हुक्म: दीन–ए–इस्लाम में छुआ–छूत कोई चीज़ नहीं है। इसलिए यह बात हमेशा नज़र में रखना चाहिये कि जो कुछ भी होता है सब अल्लाह की तरफ़ से होता है। समाज में बहुत सी बीमारियों को छूत की बीमारी समझा जाता है, जैसे कोढ़ का मर्ज़ और इस तरह के बहुत से दूसरे मर्ज़ भी। जिनके बारे में डॉक्टर भी कहते हैं कि उनमें जरासीम होते हैं, जैसे: कुत्ते के काटने की बीमारी है, इसमें ऐसे जरासीम होते हैं जो दूसरी जगह पहुंच जाते हैं। ग़रज़ इस तरह की जो भी बीमारियां हैं ऐसे मौक़े पर आदमी का अक़ीदा ख़राब हो जाता है और वह यह समझता है कि हम चूंकि फ़लां मरीज़ के पास गये थे, इसलिए हमें भी वह बीमारी लग गयी और वह यह नहीं समझता कि बीमारी अल्लाह के हुक्म से लगती है। किसी के अमल से नहीं लगती। बल्कि महज़ अल्लाह के हुक्म से लगती है। इसीलिए आप

(स0अ0) ने इस अक़ीदे की काट की कि छुआ–छूत कोई चीज़ नहीं है। सबकुछ अल्लाह के करने से होता है। एक शख़्स मरीज़ के पास जाता है, उसको कुछ नहीं लगता और एक शख़्स जाता है उसको लग जाता है। लिहाज़ा सवाल यह पैदा होता है कि पहले को क्यों नहीं लगा?और बाद वाले को क्यों लगा? अगर इस हक़ीक़त पर आदमी ग़ौर करे तो यह बात समझ में आ जायेगी कि सबकुछ अल्लाह तआला के करने से होता है।

आप (स0अ0) ने ऐसे मौक़े पर अक़ीदे की ख़राबी से बचने के लिये सद्बाब के तौर पर बहुत सी बातें इरशाद फ़रमायीः फ़रमायाः कोढ़ी से ऐसे ही भागो, जैसे शेर से भागते हो। इस हदीस और छुआ–छूत से मोमानियत वाली हदीस में बज़ाहिर एक तरह का विरोधाभास लग रहा है। इसलिए कि यहां कहा जा रहा है कि कोढ़ी से ऐसे ही भागो जैसे शेर से भागते हो और वहां यह कहा जा रहा है कि छुआ–छूत कोई चीज़ नहीं है। लेकिन ग़ौर किया जाये तो यह समझ में आयेगा कि यहां असलन अक़ीदे की इस्लाह की जा रही है और वहां जो बात कही गयी है वह भी दर हक़ीक़त अक़ीदे को सालिम और महफ़ूज़ रखने के लिये है। तो इस तरह की आदमी ज़ज़ामी के पास जाये और इत्तिफ़ाक़ की बात की वह मर्ज़ उसको लग जाये तो यही कहेगा कि हम कोढ़ी के पास गये थे इसलिए बीमारी लग गयी। मालूम हुआ कि ऐसी नौबत से बचाने के लिये आप (स0अ0) ने फ़रमाया कि जज़ामी से दूर रहो क्योंकि जब तुम वहां जाओगे और अगर तुमको मर्ज़ लगेगा तो तुम्हारा अक़ीदा ख़राब होगा। इससे बेहतर यह है कि वहां मत जाओ। लेकिन अगर कोई ऐसा शख़्स है जिसका अक़ीदा पहाड़ की तरह मज़बूत है उसके लिये कोई हर्ज नहीं और ऐसी मोतादिद मिसाले हैं जो अपने अक़ीदे की पुख़्तगी की बुनियाद पर इस सिलसिले में ज़रा भी नहीं हिचकिचाते। खुद रसूलुल्लाह (स0अ0) की मिसाल भी मौजूद है कि आपने कोढ़ी के साथ–साथ बैठकर खाना खाया। उसके अलावा बाद के दौर की भी बेशुमार मिसालें है। लेकिन यह उसके लिये हैं जिसका अक़ीदा पहाड़ की तरह मज़बूत हो और अगर कोढ़ी के पास बैठने के बाद उसको कोढ़ हो जाये तो वह यह न कहे कि कोढ़ी के साथ बैठकर खाना खाया था इसलिए मुझे कोढ़ लग गया। बल्कि यह कहे कि अल्लाह का हुक्म था इसलिए लग गया। अगर किसी शख़्स का ऐसा अक़ीदा है तो कोई हर्ज नहीं। लेकिन जैसा कि आम तौर पर अक़ीदे में कमज़ोरी होती है। ईमान में भी कमज़ोरी होती है और अल्लाह की ज़ात पर इस तरह का यक़ीन नहीं होता जैसा कि होना चाहिये, तो ऐसे लोगों के लिये बेहतर यही है कि वैसी जगह जाने से परहेज़ करें जहां जाकर अक़ीदे में बिगाड़ पैदा होने का अंदेशा हो। यही वजह है कि आप (स0अ0) ने फ़रमायाः जिस जगह कोई वबा फैली हुई हो उस जगह मत जाओ। और अगर तुम उसी जगह पर हो तो वहां से निकल कर बाहर मत जाओ। दरहक़ीक़त यह हुक्म भी उसी अक़ीदे को महफ़ूज़ रखने और उन ख़तरों के दूर करने के लिये है। क्योंकि अगर आदमी वहां जायेगा और मर्ज़ लग जायेगा तो यही कहेगा कि मैं यहां क्या आ गया एक अजीब ही चक्कर में फंस गया, इसीलिए वज़ाहत कर दी गयी कि अगर अक़ीदा कमज़ोर है तो ऐसी जगह जाने से एहतियात करें। इसी तरह अगर किसी जगह मर्ज़ फैला हुआ है तो वहां के लोग बाहर जाने से परहेज़ करें, इसलिए कि अगर कोई बाहर निकला और उसका मर्ज़ किसी और के लग गया तो यही कहा जायेगा कि फ़लां जज़ामी आया था,उसकी वजह से यहां पर भी जज़ाम फैल गया। इसीलिए आप (स0अ0) ने फ़रमाया, ऐसे मौक़े पर बाहर मत निकलो। हत्ता कि लोगों के अन्दर बिगाड़ पैदा न हो जाये। मालूम हुआ कि यह सारी चीज़े सद्बाब के लिये हैं, इसका यह मतलब हरगिज़ नहीं कि आप (स0अ0) ने गोया यह फ़रमा दिया कि छुआ–छूत होती है। वाक़्या यह है कि छुआ–छूत कोई चीज़ नहीं।

मुलाहज़ाः बहुत से मर्ज़ ऐसे होते हैं जिनमें कीड़े होते हैं और छोटे–छोटे जरासीम होते हैं। वह जरासीम क़रीब जाने से चढ़ जाते हैं। इस सिलसिले में वाज़ेह रहे कि ऐसे मौक़े पर छुआ–छूत का कोई मसला नहीं है। बल्कि वह मसला ज़ाहिरी असबाब का है। इसलिए कि ज़रूरी नहीं कि वह कीड़े आपके ऊपर चढ़ ही जायें। कभी ऐसा होता है कि वह चढते हैं और कभी नहीं भी चढ़ते हैं अलबत्ता बेहतर यही है कि आदमी दूर रहे ताकि उसके अक़ीदे के अन्दर बिगाड़ पैदा न हो। लेकिन यह अक़ीदा हमेशा मज़बूत रखे कि कोई छुआ–छूत नहीं है। ऐसा नहीं है कि कहीं महक पहुंच जाने से कुछ हो जाता है। बल्कि सबकुछ अल्लाह के करने से होता है। इसलिए हम देखते हैं कि एक आदमी जाता है तो कुछ नहीं होता और दूसरा आदमी जाता है तो उसको हो जाता है, मालूम हुआ जो भी होता है अल्लाह के हुक्म से होता है। जिसके बारे में हुक्मे इलाही हुआ कि उसके जरासीम चढ़े तो चढ़ जाते हैं और जिसके बारे में हुक्म है कि न चढें तो नहीं चढ़ते हैं। गोया फ़ी नफ़सिही यह कोई चीज़ नहीं है।

जुर्म के रोकथाम की कोशिशें क्यों और कैसे?

मौलाना ख़ालिद सैफ़ुल्लाह रहमानी

अल्लाह तआला ने इस दुनिया को इस तौर पर बसाया है कि इसमें इन्सान की ख़्वाहिश के एक से एक सामान हैं। लज़ीज़ से लज़ीज़ ख़ाने की चीज़ें है। उम्दा से उम्दा पानी है। आंखों को भाने वाले रंगबिरंगे फूल हैं। दिल को रिझाने वाले झरने और झील हैं। हसीन से हसीन तर इन्सान हैं, कि अहले हवस जिसके असीरे ज़ुल्फ़ होकर रह जाते हैं और कितनी ही नेमतें है जिनसे इन्सान की तरह–तरह की ख़्वाहिशात मुताल्लिक़ हैं। लेकिन अल्लाह तआला ने इस दुनिया में मफ़ादात व ख़्वाहिशात और चाहतों में तसादुम की कैफ़ियत रखी है। चीज़ एक है लेकिन तलबगार कई हैं। ख़्वाहिश किसी एक ही कि पूरी की जा सकती है, लेकिन कितनी ही ख़्वाहिशात हैं जो इस एक शै से मुताल्लिक़ हैं।

आख़िरत का मामला उससे अलग होगा। आख़िरत की दुनिया में ख़्वाहिशात भी होंगी और हर ख़्वाहिश की तकमील भी। अल्लाह तआला की नेमतें वाफ़र मिक़दार में होंगी और इतनी यकसानियत के साथ दस्तयाब होंगी कि कोई तसादुम और टकराव न होगा, और सबसे अहम बात यह होगी कि वह जन्नत में भी दरजात व मरातिब का फ़र्क़ होगा, लेकिन हर शख़्स को यूं महसूस होगा कि वही सबसे बेहतर हालत में है। यह एहसास उसके क़ल्ब को पुरसुकून रखेगा और एहसासे महरूमी का कोई साया भी उसके सर से न गुज़रेगा। जन्नत में रहने वालों के दरमियान न कोई तसादुम और टकराव होगा, न बाहमी नफ़रत व अदावत और इसलिए वहां जुर्म का कोई मुहरिक भी न होगा।

इस दुनिया में चूंकि इन्सान तसादुम और मुसाबक़त के माहौल में ज़िन्दगी गुज़ारता है। यही टकराव नफ़रत व अदावत और मुख़ालिफ़त को जन्म देता है। फिर कुछ लोग अपनी ख़्वाहिशात को पूरा करने और मफ़ादात को हासिल करने में कामयाब होते हैं और कुछ लोग महरूम व नाकाम। जो महरूम होता है या किया जाता है उसके दिल में इन्तिक़ाम और बदले के जज़्बात मोजज़न होते हैं। और यही जज़्बात जुर्म की सूरत अख़्तियार करते हैं। दुनिया में हर तबक़ा मफ़ादात में दूसरे तबक़े से मुतसादिम है। ग़रीबों को मालदारों से गिला है, मज़दूरों को आजरीन से शिकवा है, रिआया हाकिमों और फ़रमारवाओं से शाकी है। यह तक़सीम दुनिया में हमेश क़ायम रहेगी कि इसी से कायनात की हमारंगी क़ायम है। इसलिए आख़िरत से पहले ऐसी दुनिया का तसव्वुर नहीं किया जा सकता जो जुर्म और जुर्म के जज़्बात से मुकम्मल तौर पर महफ़ूज़ व मामूर हो। अलबत्ता जुर्म को रोकने की मुमकिन तदाबीर अख़्तियार की जा सकती हैं और की जाती हैं।

जुर्म को रोकने के तीन महरिकात हैं। अव्वल तबई शराफ़त दूसरे क़ानून का ख़ौफ़ तीसरे आख़िरत में जवाबदेही का यक़ीन। अल्लाह तआला ने इन्सान की फ़ितरत में असलन सलामती और सलाहियत रखी हैं। इसी को रसूलुल्लाह स0अ0 ने फ़रमाया कि हर बच्चा फ़ितरते इस्लाम पर पैदा होता है। इन्सान बहर हाल अपनी सरिश्त के एतबार से दरिन्दा नहीं होता। ज़ुल्म व जोर और गुनाह पर उसका ज़मीर यक़ीनन उसे कोसता है। इसीलिए जुर्म पेशा क़ातिले नफ़सियाती बीमारियों में पड़ जाते हैं। गुनाहों का एहसास उनका ताक़्क़ुब करता रहता है। उनकी रातें बेख़्वाब हो जाती हैं और बाज़ पर तो इतना ज़्यादा नफ़सियाती दबाव होता है कि वे ख़ुदकशी कर लेते हैं। बहुत से इन्सान वह हैं जिनको तबई शराफ़त और ज़मीर की आवाज़ गुनाह से रोके रखती है। वह इस्लाम और किसी मज़हब के क़ायल न हो। वह दहरिया क्यों न हो। फिर भी अल्लाह तआला ने क़ल्ब में गुनाह पर रोकने और टोकने की जो सलाहियत दी है वह उसे थामे रहता है।

जुर्म को रोकने का दूसरो मुअस्सिर ज़रिया क़ानून है। इस दुनिया में जब से इन्सानों की बस्ती बसी है वह किसी न किसी क़ानून का पाबन्द रहा है। बहुत से लोग जो बेज़मीरी में मुब्तिला हैं और ख़ुदा के ख़ौफ़ से भी आरी हैं, सिवाय क़ानून के कोई चीज़ नहीं जो उनके हाथ को थाम सके। इस्लाम ने भी कुछ जराएम के लिये सज़ाए मुक़र्रर की हैं और वह यह है। जिना, चोरी, ज़िना की तोहमत, शराबनोशी, राहज़नी और इरतदाद इनसे

मुताल्लिक़ सज़ाओं को हुदूद कहते हैं। यह जराएम अल्लाह के हुक़ूक़ से मुताल्लिक़ माने गये हैं। इसलिए अदालत यह ख़ुद साहबे मामला भी मुजरिम को माफ़ करने का मजाज़ नहीं। इस्लाम के निज़ामे जुर्म व सज़ा में दूसरी अहम चीज़ क़िसास व दियत है। यह क़त्ल और जुज़्वी जिस्मानी मुज़र्रत रिसानी से मुताल्लिक़ है। इस जुर्म को बन्दों के हुक़ूक़ से मुताल्लिक़ फ़रमा दिया गया है। इसलिए साहबे मामला या उसके औलिया जुर्म को माफ़ कर सकते हैं और माल की किसी मख़सूस मिक़दार पर सुलह भी कर सकते हैं। इनके अलावा जो जराएम हैं उनकी बाबत अदालत अपनी सवाबदीद से सज़ा का फ़ैसला कर सकती है और मुल्क की पार्ल्यामेंट के लिये भी ऐसे जराएम के बारे में क़ानून साज़ी की गुंजाइश है। इन जराएम से मुताल्लिक़ सज़ा को फ़िक़ की इस्तेलाह में ताज़ीर कहा जाता है।

गुनाह से बाज़ रखने का तीसरा सबसे अहम और सबसे असरअंगेज़ मुहर्रिक आख़िरत की जवाबदेही का एहसास है। क़ानून दिन के उजाले में इन्सान के हाथ थाम सकता है लेकिन रात के अंधेरों और इन्सान के ख़लवत कदों तक नहीं पहुंच सकता। आख़िरत की जवाबदेही का एहसास ही ऐसी ताक़त है जो इन्सान को अपनी तन्हाइयों में भी जुर्म से बाज़ रखती है। हक़ीक़त यह है कि अगर किसी शख़्स की तबियत मुजरिमाना हो और खुदा का ख़ोफ़ उसके दिल में न हो तो कोई ताक़त नहीं जो उसको जुर्म से रोक सके। वह अपनी कोताहकारियों के लिये हज़ार तदबीरें निकाल लेगा और नये–नये रास्ते तलाश कर लेगा। इसीलिए क़ुरआन मजीद में जहां किसी बात से मना किया है वहां ख़ौफ़े खुदावन्दी और आख़िरत की जवाबदेही की तरफ़ मुतवज्जे फ़रमाया है।

ज़िना इस्लामी नुक़्ताए नज़र में हदों में शामिल है। ग़ैर शादी शुदा मर्दों के लिये इसकी सज़ा सौ कोड़े है। और शादी शुदा के लिये संगसार करना । ज़ाहिर है कि यह निहायत सख़्त सज़ा है। इसकी वजह यह है कि ज़िना के नुक़्सानात भी बहुत शदीद हें। ज़िना न सिर्फ़ दामने अख़लाक़ को तार–तार करने और मज़हबी कदरों को पामाल करने मुतआरिफ़ है बल्कि यह एक पूरे ख़ानदान की इज़्ज़त व आबरू से खेलना और उस पर नंग व आर का टीका लगाना है। जब एक मर्द किसी औरत से बदकारी करता है तो यह फेल औरत के पूरे ख़ानदान के लिये समाजी एतबार से बेइज़्ज़ती का बाइस समझा जाता है और असहाबे शराफ़त के यहां ख़ुद इस मर्द के ख़ानदान के लिये भी यह चीज़ कुछ कम बाइसे हया नहीं होती। ज़िना का सबसे ज्यादा नुक़सान पैदा होने वाले बच्चे को होता है। वह बाप से महरूम होता है। बाप से महरूमी न सिर्फ़ उसको अपनी शिनाख़्त और मीरास से महरूम करती है बल्कि क़ानूनी तौर पर उसके इख़्राजात का कोई कफ़ील भी बाक़ी नहीं रहता। अगर कुवांरी लड़की के साथ दश्तदराज़ी की गयी हो तो उसका कुवांरपन ज़ाया हो जाता है ऐसा नुक़सान है जिसकी किसी तौर पर तलाफ़ी मुमकिन नहीं है। और अगर वह शादीशुदा है तो यह उसके शौहर के साथ भी ज़्यादती है कि उससे उसकी इज़्ज़त व आबरू को सदमा पहुंचने के अलावा क़रीबी ज़माने में पैदा होने वाले बच्चे का नस्ब भी मशकूक हो जाता है। इसलिए इस्लाम ने ज़िना की सज़ा बहुत सख़्त मुक़र्रर की है।

इस्लाम ने यह और इसके क़िस्म के जराएम में जिस्मानी सज़ा मुक़र्रर की है, क्योंकि तर्जुबा यह है कि जिस्मानी सज़ा मुजरिम पर जिस ज़रिये असरअंदाज़ होती है, महज़ क़ैद से वह नतीजा हासिल नहीं हो पाता, बल्कि आदाद शुमार के तजुबे से मालूम होता है कि जिन मुजरिमों को जेल भेजा गया, अपने हमपेशा मुजरिमों के साथ यकजाई की वजह से उनके जुर्म की सलाहियत में इज़ाफ़ा हुआ है। 1960 ईसवी में मिस्र में जुर्म के आदाद शुमार के मुताबिक़ चोरी के 719 केस हुए। उनमें सिर्फ़ 35 केस ऐसे थे जो एक दो तीन या उससे ज़्यादा चोरी की सज़ा में जेल जा चुके थे। और उनमें ग़ालिब तादाद उन मुजरिमों की थी जो तीन बार से ज़्यादा जेल के चक्कर लगा चुके थे। इससे अंदाज़ा किया जा सकता है कि जिस मुजरिम ने जितनी सज़ा पायी है और जितनी बार जेल गया, अपने हमपेशा मुजरिमीन की सोहबत से उसके जुर्म के जज़्बे में इज़ाफ़ा होता गया। उसके बरख़िलाफ़ जिस्मानी सज़ाएं जुर्म को रोकने में ज़्यादा मुअस्सिर साबित हुई हैं।

.....शेष पेज 14 पर

रोज़े की हक़ीक़त

अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी

रोज़ा इन्सान के दिल व दिमाग़ को तहारत बख़्शता है। माद्दा परस्ती से इन्सान को बुलन्द करता है। घटिया कैफ़ियत से पाक व साफ़ करता है। अख़लाक़ी गिरावट से बहुत ऊपर उठाता है। ख़ौफ़े ख़ुदा का एहसास पैदा करता है। मुसीबतों को बर्दाश्त करने का हौसला बख़्शता है। भूखे–प्यासे लोगों का दर्द पैदा करता है।

अरबी ज़बान में रोज़े के लिये "सौम" का शब्द आता है, जिसका अर्थ लुग़्त (शब्दकोष) में खाने–पीने, बोलने, शादी करने और चलने–फिरने से रुक जाने और बाज़ रहने का है।

शरई इस्तलाह में रोज़ा तुलू फ़ज्र से लेकर ग़ुरूब तक खाने–पीने और मुबाशरत करने से बतौर इबादत रुके रहने का नाम है। रोज़ा इस्लाम के पांच अरकान में से एक रुक्न है। सन् 2 हिजरी से रमज़ान के रोज़े फ़र्ज़ किये गये। किताब व सुन्नत और इजमा–ए–उम्मत से उसकी फ़र्ज़ियत साबित है। बिना किसी शरई उज़्र के इस इबादत को छोड़ देने वाला सख़्त गुनाहगार और उसकी फ़र्ज़ियत का इनकार करने वाला इस्लाम से ख़ारिज है। क़ुरआन मजीद में रोज़े की फ़र्ज़ियत का तज़किरा करते हुए अल्लाह तआला इरशाद फ़रमाता है: "ऐ लोगो जो ईमान लाये हो जिस तरह तुमसे पहले गुज़रे हुए लोगों पर फ़र्ज़ किये गये थे ताकि तुम मुत्तक़ी बनो।" (सूरह बक़राः 183)

दरहक़ीक़त इस आयत के ज़रिये ख़्वाहिशाते नफ़सानी पर कन्ट्रोल करने का सलीक़ा सिखाया गया है।

रमज़ान के रोज़ों की फ़ज़ीलत को बयान करने वाली हदीसें बहुत सारी हैं, हम कुछ हदीसें नक़ल करते हैं:

"जो शख़्स रमज़ान में ईमान के साथ सवाब की उम्मीद में रोज़ा रखता है उसके गुज़रे हुए गुनाह माफ़ हो जाते हैं और जो शख़्स लैलतुल क़द्र में ईमान के साथ सवाब की तवक्को रखते हुए इबादत करता है उसके भी साबिक़ा गुनाह माफ़ कर दिये जाते हैं।" (सही बुख़ारी)

पिछले गुनाहों के माफ़ होने का मतलब यह है कि गुनाह–ए–सग़ीरा माफ़ हो जाते हैं और गुनाह–ए–कबीरा की शिद्दत में कमी आती है। कबीरा गुनाहों से माफ़ी के लिये सच्ची–पक्की नदामत से भरी तौबा ज़रूरी है। रसूलुल्लाह स0अ0 अपने सहाबा को रमज़ान के आने की ख़ुशख़बरी सुनाते और फ़रमातेः

"तुम्हारे लिये रमज़ान का महीना आ गया, यह मुबारक महीना है। अल्लाह तआला ने इसके रोज़े तुम पर फ़र्ज़ किये हैं। इसमें रहमत के दरवाज़े खोल दिये जाते हैं और जहन्नम के दरवाज़े बन्द कर दिये जाते हैं और शैतान इस महीने में बन्द कर दिये जाते हैं। इस महीने में एक ऐसी रात है जो एक हज़ार महीनों से बेहतर है।" (मुसनद अहमद)

हज़रत सहल बिन साद फ़रमाते हैं; रसूलुल्लाह स0अ0 ने इरशाद फ़रमायाः "जन्नत में एक दरवाज़ा है जिसे रय्यान कहा जाता है। क़यामत के दिन रोज़ेदार उस दरवाज़े से दाख़िल होंगे, कहा जायेगाः रोज़ेदार कहां है? सब रोज़ेदार खड़े हो जायेंगे। उनका अलावा कोई दूसरा दाख़िल नहीं होगा, जब वो दाख़िल होंगे तो दरवाज़ा बन्द कर दिया जायेगा, कोई दूसरा उस दरवाज़े से दाख़िल नहीं हो सकेगा।"

हज़रत अबूहुरैरा रज़ि0 फ़रमाते हैं; रसूलुल्लाह स0अ0 ने इरशाद फ़रमायाः "उस शख़्स की नाक ख़ाक में मिल जाये, उस पर रमज़ान आये और चला भी जाये, फिर भी उसकी मग़्फ़िरत न हो।" (सुनन तिरमिज़ी)

बहुत सी रिवायतों में इसका भी इज़ाफ़ा है कि जो उस दरवाज़े से दाख़िल होगा, वह कभी प्यासा नहीं होगा। रोज़े में भूख व प्यास दोनों बर्दाश्त किये जाते हैं अलबत्ता प्यास की बेताबी भूख से ज़्यादा होती है, इसलिए उनको यह बदला मिलेगा कि कभी प्यासे नहीं होंगे। रोज़ेदार से मुराद बज़ाहिर वह हज़रात हैं जो फ़र्ज़ रोज़े के अलावा मज़ीद सुन्नत व नफ़िल रोज़े के भी आदी हों। वल्लाहु आलम

रोज़े की फ़र्ज़ियत बताते हुए गुज़िश्ता आयत में कहा गया था "कमा कतब अलल लज़ीना मिन क़बलिकुम" इससे मुराद फ़र्ज़ियत में यकसानियत है। रोज़ों की कैफ़ियत में यकसानियत नहीं है। जम्हूर मुहक़्क़िक़ीन का यही कहना है। साबिक़ा लोगों का हवाला तरग़ीब व तहरीज़ के लिये है, यानि तुम्हारी तरह उन पर भी फ़र्ज़ थे, उनका ज़माना गुज़र चुका, अब तुम्हारा दौर है, अल्लाह की इबादत को बेहतर से बेहतर तरीक़े पर अदा करके दिखाओ, अल्लाह ने अपने एहकामात पर अमल करने के

तरीक़े मुख़्तलिफ़ रखे हैं। वह हर एक के अमल को जांचता है। उसका मुतालबा यह है कि भलाइयों में सबक़त की जाये और अपने अमल के जज़्बे को बन्दा दिखाये, अल्लाह का इरशाद है: "अगर अल्लाह चाहता तो तुमको एक ही उम्मत बना देता (यानि शरीअत और रास्ता बिल्कुल एक ही रहता लेकिन उसने ऐसा नहीं किया) ताकि अपनी दी हुई चीज़ में तुम्हें आज़माए, इसलिए ऐ लोगो! तुम भलाइयों में ख़ूब आगे बढ़ो।" (सूरह माइदा: 48)

हज़रत हसन बसरी रह0 फ़रमाते हैं कि आयत से मुराद गुज़री हुई तमाम क़ौमें हैं। अल्लाह ने उनपर किसी न किसी शक्ल में रोज़ा फ़र्ज़ ज़रूर किया था। बाज़ हज़रात ने यह तफ़सील बतायी है कि हज़रत आदम अलैहिस्सलाम से लेकर आंहज़रत स0अ0 तक हर नबी और उनकी उम्मत पर रोज़ा किसी न किसी शक्ल में फ़र्ज़ था। एक तादाद इससे मुराद यहूद व नसारा को क़रार देती है। वल्लाहु आलम

आयत के आख़िर में रोज़े का अस्ल मक़सद बताते हुए कहा गया है "ताकि तुम तक़वे वाले बन जाओ" यह रोज़े की अस्ल ग़रज़ व ग़ायत है। अल्लाह के ख़ौफ़ का वह एहसास जो ज़िन्दगी के हर मरहले में साथ–साथ रहे, तक़वा कहलाता है। इस एहसास के बाद ज़िन्दगी बहुत ही पाक व साफ़ हो जाती है। ज़ाहिर व बातिन की यकसानियत पैदा होती है। हर क़िस्म की मकरूह चीज़ों से तबियत में नफ़रत आ जाती है। गोया रोज़ें में हलाल चीज़ों को हराम करके यह पैग़ाम दिया जाता है कि ज़िन्दगी नाम है हर तरह की गन्दगी से पाक व साफ़ रहने का। लिहाज़ा कोई शख़्स ज़ाहिरी तौर पर रोज़ा रखे लेकिन रोज़े के मक़ासिद से इन्हिराफ़ करते हुए हराम कामों में भी लगा रहे, तो अल्लाह के नज़दीक वह रोज़ेदार नहीं महज़ भूखा–प्यासा इन्सान है। रसूलुल्लाह स0अ0 का इरशाद है: "जो झूठी बातें और झूठे काम न छोड़े तो अल्लाह को भी उसकी कोई ज़रूरत नहीं कि वह अपने खाने–पीने को छोड़े रहे।"

यह भी इरशाद है: "कुछ रोज़ेदार ऐसे हैं जिनको अपने रोज़े से भूख के अलावा कुछ भी नहीं मिलता (बहुत सी रिवायतों में प्यास का भी लफ़्ज़ है) और कुछ शब बेदार ऐसे हैं जिनको अपनी रातों की इबादत से सिवाय नींद छोड़ने और कुछ हासिल नहीं होता।"

यह हक़ीक़त में में वो लोग हैं जो रोज़े से तक़वे का सबक़ हासिल नहीं करते।

शेषः इब्सिदादे जराएम – क्यों और कैसे?

.....सऊदी अरब में 74 ईसवी तक जुर्म के सिर्फ़ चोरी के सिफ़ बारह वाक़्यात थे जिनमें हाथ काटने की नौबत आयी। लीबिया में भी एक ज़माने में क़ानूने शरीअत का निफ़ाज़ अमल में आया था, तो तीन साल में सिर्फ़ 6 मुजरिमों के हाथ काटने की नौबत आयी। इसलिए इसमें शुब्हा नहीं कि जिस्मानी सज़ाएं, क़त्ल वग़ैरह किसी जुर्म को रोकने में जिस दर्जे मुअस्सिर हैं, महज़ क़ैद की सज़ा उस दर्जे जुर्म के सद्बाब में मुफ़ीद नहीं।

हिन्दुस्तान में अवलन तो जुर्म के मुहरिकात को खुली छूट दे दी गयी है। फ़हश फ़िल्मों का बाज़ार गर्म है। उरयां वीडियो कैसेट मिलते हैं। टीवी ने हया की चादर उतार फेंकी है। बेपर्दगी और उरयानियत ने पूरे माहौल को मसमूम बना दिया है। तालीम गाहों से लेकर दफ़ातिर तक मख़लूत निज़ाम को अपनी तरक़्क़ी की अलामत तसव्वुर किया जाता है। शराब आम है और एक तबके को ज़िना के लाइसेंस जारी किये जाते हैं। बल्कि ग़ैर शादी शुदा औरतों से बाहिमी रज़ामंदी से बदकारी की जाती है तो क़ानून की नज़र में वह ज़िना है ही नहीं। फिर क़ानूनी शहादत इतनी बेएहतियाती पर मुबनी होती है कि महज़ एक शख़्स की गवाही पर भी अहम से अहम फ़ैसले किये जाते हैं। इन हालात में ज़िना की सज़ा फ़ांसी को क़रार देना मेरा ख़्याल है कि कोई क़रीने इन्साफ़ बात न होगी, इसलिए फ़ुक़्हा ने हुदूदे शरीअत के जारी होने के लिये "दारुलइस्लाम" की शर्त लगायी है। ज़ानी बेशक सख़्ततरीन सज़ा का मुस्तहिक़ है, लेकिन इन्साफ़ का तक़ाज़ा यह है कि उसको जुर्म से बचने का माहौल दिया जाये, जो माहौल क़दम–क़दम पर गुनाह की दावत देता हो, उस माहौल में मुजरिम को इस तरह की सज़ा देना यक़ीनन महल्ले नज़र है। इसीलिए हुकूमत को चाहिये कि पहले ऐसे क़ानून बनाये जो जुर्म के अवामिल और मुहर्रिकात को रोक सके और ऐसे पाकीज़ा समाज की तामीर हो सके जिसमें इन्सान गुनाह की तरफ़ हाथ बढ़ाने में सौ बार सोचने पर मजबूर हो। फिर ज़िना की क़रार वाक़ई सज़ा मुकर्रर करे।

रोज़े के जिस्मानी व रूहानी फ़ायदे

हकीम क़ाज़ी ख़ालिद, (एम. ए.)

अल्लाह तआला ने तीन तरह की मख़लूक़ पैदा की हैं। नूरी यानि फ़रिश्ते, नारी यानि जिन्न और ख़ाकी यानि इन्सान जिसे अशरफ़ुल मख़लूक़ात का दर्जा दिया गया। दर अस्ल इन्सान रूह और जिस्म के मजमूए का नाम है और उसकी तख़लीक़ इस तरह मुमकिन हुई कि जिस्म मिट्टी से बनाया गया और इसमें रूह आसमान से लाकर डाली गयी। जिस्म की ज़रूरतों का सामान या एहतिमाम ज़मीन से किया गया कि तमाम तर अनाज, ग़ल्ला, फल और फूल ज़मीन से उगाए जबकि रूह की ग़िज़ा का एहतिमाम आसमानों से होता रहा। हम साल के ग्यारह माह अपनी ज़िस्मानी ज़रूरतों को इस कायनात में पैदा होने वाली चीज़ों से करते रहते हैं और अपने जिस्म को तन्दरुस्त व तवाना रखते हैं। मगर रूह की ग़िज़ाई ज़रूरत को पूरा करने की ग़रज़ से हमें पूरे साल में एक महीना ही मयस्सर आता है जो रमज़ानुल मुबारक है।

दुनिया के एक अरब से ज़्यादा मुसलमान क़ुरआन के हुक्मों की रोशनी में बिना किसी जिस्मानी व दुनयावी फ़ायदे का तमअ किये तामीलन रोज़ा रखते हैं। ताहम रूहानी तस्कीन के साथ–साथ रोज़ा रखने से जिस्मानी सेहत पर भी मुसबत असरात मुरत्तब होते हैं, जिसे दुनिया भर के तिब्बी माहिरीन ख़ासकर डॉक्टर माइकल, डॉक्टर जोज़फ़, डॉक्टर सैम्यूअल इलेक्ज़ेन्डर, डॉक्टर ब्राम जे, डॉक्टर ऐमरसन, डॉक्टर ख़ान यम्रट, डॉक्टर एडवर्ड निकल्सन और जदीद साइंस ने हज़ारों क्लीनिकल ट्रायल्ज़ से तस्लीम किया है। कुछ अर्से पहले तक यही ख़्याल किया जाता था कि रोज़े के तिब्बी फ़ायदे निज़ामे हज़्म तक ही महदूद हैं लेकिन जैसे–जैसे साइंस और इल्मे तिब ने तरक़्क़ी की, दीगर बदने इन्सानी पर उसके फ़ायदे आशकार होते चले गये और मुहक़्क़िक़ इस बात पर मुत्तफ़िक़ हुए कि रोज़ा तो एक तिब्बी मोजज़ा है।

आइये! अब जदीद तिब्बी तहक़ीक़ात की रोशनी में देखें कि रोज़ा इन्सानी जिस्म पर किस तरह अपने मुफ़ीद असरात मुरत्तब करता है।

रोज़ा और निज़ामे हज़्मः हाज़मे का निज़ाम जैसा कि हम सब जानते हैं कि एक–दूसरे से क़रीबी तौर पर मिले हुए बहुत से अअज़ा पर मुश्तमिल होता है। अहम आज़ा जैसे मुंह और जबड़े में लुआबी गुदूद, ज़बान, गला, मुक़व्वी नाली (Limentary Canal) यानि गले से मेदे तक ख़ुराक ले जाने वाली नाली। मेदा, बारह अंगुश्ती आंत, जिगर और लबलबा और आंतों से मुख़्तलिफ़ हिस्से वग़ैरह तमाम आज़ा इस निज़ाम का हिस्सा हैं। जैसे ही हम कुछ खाना शुरू करते हैं या खाने का इरादा ही करते हैं यह निज़ाम हरकत में आ जाता है और हर उज़ू अपना मख़सूस काम शुरू कर देता है।

ज़ाहिर है कि मौजूदा लाइफ़स्टाइल से यह सारा निज़ाम चौबिस घंटे ड्यूटी पर होने के अलावा ऐसाबी दबाव जंक फूड और तरह–तरह के मुज़िरे सेहत अलम–ग़लम खानों की वजह से मुतास्सिर हो जाता है। रोज़ा इस सारे निज़ामें हज़्म पर एक माह का आराम तारी कर देता है। उसका हैरानकुन असर बतौर ख़ास जिगर पर होता है क्योंकि जिगर में निज़ामे हज़म में हिस्सा लेने के अलावा पन्द्रह मज़ीद अमल भी सर अंजाम देने होते हैं। रोज़े के ज़रिये जिगर को चार से छः घंटे तक आराम मिल जाता है। यह रोज़े के बिना क़तई नामुमकिन है क्योंकि बेहद मामूली ख़ुराक यहां तक कि एक ग्राम के दसवें हिस्से के बराबर भी, अगर मेदे में दाख़िल हो जाता है तो पूरा का पूरा निज़ामे हज़म अपना

काम शुरू कर देता है और जिगर फ़ौरन मसरूफ़े अमल हो जाता है। जिगर के इन्तिहाई मुश्किल कामों में एक काम इस तवाज़ुन को बरक़रार रखना भी है जो ग़ैर हज़म शुदा ख़ुराक़ और तहलील शुदा ख़ुराक़ के दरमियान होता है। उसे या तो हर लुक़्मे को स्टोर में रखना होता है या फिर ख़ून के ज़रिये उसके हज़म होकर तहलील हो जाने के अमल की निगरानी करनी होती है जबकि रोज़े के ज़रिये जिगर तवानाई बख़्श खाने के स्टोर करने के अमल में ग्लोबलिन जो जिस्म के महफ़ूज़ रखने वाले मुदाफ़अती निज़ाम को तक़वियत देता है, की पैदावार पर सर्फ़ करता है।

रमज़ानुल मुबारक में मोटापे के शिकार अफ़राद का नारमल सहरी और इफ़तारी करने की सूरत में आठ से दस पाउन्ड वज़न कम हो सकता है, जबकि रोज़ा रखने से इज़ाफ़ी चर्बी भी ख़त्म हो जाती है। वह ख़्वातीन जो औलााद की नेमत से महरूम हैं और मोटापे का शिकार हैं वह ज़रूर रोज़ा रखे ताकि उनका वज़न कम हो सके। याद रहे कि जदीद मेडिकल साइंस के मुताबिक़ वज़न कम होने से बेऔलाद औरतों को औलाद होने के इम्कानात कई गुना बढ़ जाते हैं। रोज़े से मेदे की रूतूबतों में तवाज़ुन आता है। निज़ामे हज़्म की रूतूबतों को ख़ारिज करने का अमल दिमाग़ के साथ वाबस्ता है। आम हालात में भूख के दौरान यह रूतूबतें ज़्यादा मिक़दार में ख़ारिज होती हैं जिससे मेदे में तेज़ाबियत बढ़ जाती है, जबकि रोज़े की हालत में दिमाग़ से रूतूबत ख़ारिज करने का पैग़ाम नहीं भेजा जाता क्योंकि दिमाग़ के ख़लियों में यह बात मौजूद होती है कि रोज़े के दौरान खाना–पीना मना है। यूं निज़ामें हज़म ठीक काम करता है। रोज़ा निज़ामे हज़म के सबसे हस्सास हिस्से गले और ग़िजाई नाली को तक़वियत देता है इसके असर से मेदे से निकलने वाली रूतूबतें बेहतर तौर पर मुतवाज़िन हो जाती हैं जिससे तेज़ाबियत (Acidity) जमा नहीं होती उसकी पैदावार रुक जाती है। मेदे के रियाही दर्दों में काफ़ी इफ़ाका होता है। क़ब्ज़ की शिकायतें रफ़अ हो जाती है और फिर शाम को रोज़ा खोलने के बाद मेदा ज़्यादा कामयाबी से हज़म का काम अंजाम देता है। रोज़ा आंतों को भी आराम और तवानाई फ़राहम करता है। यह सेहतमंद रुतूबत के बनने और मेदे के पुठ्ठों की हरकत से होता है। आंतों के शराईन के ग़िलाफ़ के नीचे महफ़ूज़ रखने वाले ग़िलाफ़ के नीचे महफ़ूज़ रखने वाले निज़ाम का बुनियादी उन्सर मौजूद होता है। जैसे अंतड़ियों का जाल, रोज़े के दौरान उनको नई तवानाई और ताज़गी हासिल होती है। इस तरह हम इन तमाम बीमारियों के हमलों से महफ़ूज़ हो जाते हैं जो हज़म करने वाली नालियों पर हो सकते हैं।

रोज़ा और दौराने ख़ूनः रोज़े के जिस्म पर जो मुसबत असरात मुरत्तब होते हैं उनमें सबसे ज़्यादा क़ाबिले ज़िक्र ख़ून के रोगनी माद्दों में होने वाली तब्दीलियां हैं, ख़ुसूसन दिल के लिये मुफ़ीद चिकना, एच डी एल, की सतह में तब्दीलियां बड़ी अहमियत की हामिल हैं क्योंकि उससे दिल की शिरियानों को तहफ़्फ़ुज हासिल होता है, इसी तरह दो मज़ीद चिकनाइयों, एच डी एल, और ट्राई ग्लेस्राइड की सतहें भी मामूल पर आ जाती हैं, इससे यह साबित हो सकता है कि रमज़ानुल मुबारक हमें गिज़ाई बेएतदालियों पर क़ाबू पाने का बेहतरीन मौक़ा फ़राहम करता है और उसमें रोज़ों की वजह से चिकनाइयों के इस्तहाले (मेटाबोलिज़्म) की शरह बहुत बेहतर हो जाती है। याद रहे कि दौराने रमज़ान चिकनाई वाली अशिया का कसरत से इस्तेमाल इन फ़ायदों को मफ़कूद कर सकता है।

दिन में रोज़े के दौरान ख़ून की मिक़दार में कमी आ जाती है। यह असर दिल को इन्तिहाई फ़ायदेमन्द आराम फ़राहम करता है। सबसे अहम बात यह है कि रोज़े के दौरान बढ़ता हुआ ख़ून का दबाव हमेशा कम सतह पर होता है। शिरयानों की कमज़ोरी और फ़रसूदगी की अहमतरीन वुजूहात में से एक वजह ख़ून में बाक़ी मान्दा माद्दे (Remnanuls) का पूरी तरह तहलील न हो सकना है जबकि दूसरी तरफ़ रोज़ा बतौर ख़ास इफ़्तार के वक़्त के नज़दीक ख़ून में मौजूदा गिज़ाइयत के तमाम ज़र्रे तहलील हो चुके होते हैं। इस तरह ख़ून की शिरयानियों की दीवारों पर चरबी या दीगर अजज़ा जम नहीं पाते जिसके नतीजे में शिरयाने

सिकुड़ने से महफ़ूज़ रहती हैं चुनान्चा मौजूदा दौर की इन्तिहाई ख़तरनाक बीमारी शिरयानों की दीवारों की सख़्ती (Arteriosclerosis) से बचने की बेहतरीन तदबीर रोज़ा ही है। रोज़े के दौरान जब ख़ून में गिज़ाई माद्दे कम तरीन सतह पर होते हैं तो हड्डियों का गिरोह हरकत पज़ीर हो जाता है और ख़ून की पैदाइश में इज़ाफ़ा हो जाता है। इसके नतीजे में कमज़ोर लोग रोज़ा रखकर आसानी से अपने अन्दर ज़्यादा ख़ून की कमी दूर कर सकते हैं।

रोज़ा और निज़ामे ऐसाबः रोज़े के दौरान बाज़ लोगों को ग़ुस्से और चिडचिड़ेपन का शिकार देखा गया है, मगर इस बात को यहां पर अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि इन बातों का रोज़ा और ऐसाब से कोई ताल्लुक़ नहीं होता। इस क़िस्म की सूरतेहाल अनानियत (Egotistic) या तबियत की सख़्ती की वजह से होती है। दौराने रोज़ा हमारे जिस्म का ऐसाबी निज़ाम बहुत पुर सुकून और आराम की हालत में होता है। नीज़ इबादत की बजा आवारी से हासिलशुदा तस्कीन हमारे तमाम कुदूरतों और ग़ुस्से को दूर कर देती है इस सिलसिले में ज़्यादा ख़ुशअ व ख़ुज़ूअ और अल्लाह की मर्ज़ी के सामने सरनिगों होने की वजह से तो हमारी परेशानियां भी तहलील होकर ख़त्म हो जाती हैं। रोज़े के दौरान चूंकि हमारी जिन्सी ख़्वाहिशात अलाहदा हो जाती हैं चुनान्चे उसकी वजह से भी हमारे ऐसाबी निज़ाम पर किसी क़िस्म के मनफ़ी असरात मुरत्तब नहीं होते।

रोज़ा और वुज़ू के मुश्तरका असर से जो मज़बूत हम आहंगी पैदा होती है। उससे दिमाग़ के दौराने ख़ून में बेमिसाल हम आहंगी पैदा होती है जाकि सेहतमंद ऐसाबी की निशानदेही करता है। इसके अलावा इन्सानी तजतुश्शऊर जो रमज़ान के दौरान इबाइदात की मेहरबानियों की बदौलत साफ़ शफ़ाफ़ और तसकीन पज़ीर हो जाता है ऐसानी निज़ाम से हर किस्म के तनाव और उलझन को दूर करने मदद करता है।

रोज़ा और इन्सानी ख़लियातः रोज़े का सबसे अहम असर ख़लियो के दरमियान और ख़लियों के अन्दर सियाल माद्दों के दरमियान तवाज़ुन को क़ायम पज़ीर रखना है। चूंकि रोज़े के दौरान मख़्तलिफ़ सियाल मिक़दार में कम हो जाते हैं। ख़लियों के अमल में बड़ी हद तक सुकून पैदा हो जाता है। इसी तरह लुआब दार झिल्ली की बालाई सतह से मुताल्लिक़ ख़लिये जिन्हें (Epithelial) सेल कहते हैं और जो जिस्म की रुतूबत के मुतवातिर इख़राज के ज़िम्मेदार होते हैं उनको भी सिर्फ़ रोज़े के ज़रिये बड़ी हद तक आराम और सुकून मिलता है जिसकी वजह उनकी सेहतमंदी में इज़ाफ़ा होता है। ख़लियातियात के इल्म के नुक्तेनज़र यह कहा जा सकता है कि लुआब बनाने वाले गुदूद गर्दन के गुदूद तैमूसिया और लबलबा (Pancreas) के गुदूद में शदीद बेचैनी से माहे रमज़ान का इन्तिज़ार करते हैं ताकि रोज़े की बरकत से कुछ सुस्ताने का मौक़ा हासिल कर सकें और मज़ीद काम करने के लिये अपनी तवानाइयों को जिला दे सकें।

रोज़ा और ग़ैर मुस्लिमों के इन्किशाफ़ातः इस्लाम ने रोज़े को मोमिन के लिये शिफ़ा क़रार दिया है और जब साइंस ने इस पर तहक़ीक़ की तो साइंसी तरक़्क़ी चौंक उठी और क़रार किया कि इस्लाम एक कामिल मज़हब है।

आक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी के मशहूर प्रोफ़ेसर मोर पाल्डा अपना क़िस्सा इसी तरह बयान करते हैं कि मैंने इस्लामी उलूम का मुताला किया और जब रोज़े के बाब पर पहुंचा तो चौंक पड़ा कि इस्लाम ने अपने मानने वालों को इतना अज़ीम फ़ार्मूला दिया है कि अगर इस्लाम अपने मानने वालों को कुछ और न देता सिर्फ़ रोज़े का ही फ़ार्मूला दे देता तो फिर भी उससे बढ़कर उनके पास कोई और नेमत न होती। मैंने सोचा कि उसको आज़माना चाहिये, फिर मैंने रोज़े मुसलमानों के तर्ज़ पर रखना शुरू किये। मैं अर्से दराज़ से वरमे मेदा (Stomach Inflammation) में मुब्तिला था। कुछ दिनो बाद ही मैंने महसूस किया कि उसमें कमी वाक़े हो गयी है, मैंने रोज़ों की मश्क़ जारी रखी, कुछ अर्से बाद ही मैंने अपने जिस्म को नार्मल पाया और एक माह बाद अपने अन्दर इन्क़िलाबी तब्दीली महसूस की।

पोप एल्फ़ गाल्फ़ हालैन्ड के सबसे बड़े पादरी गुज़रे

हैं। रोज़ों के मुताल्लिक़ अपने तर्जुबात कुछ इस तरह बयान करते हैं कि मैं अपने रूहानी पैरोकारों को हर माह तीन रोज़े रखने की तलक़ीन करता हूं मैंने इस तरीक़ेकार के ज़रिये जिस्मानी और वज़नी हमआहंगी महसूस की। मेरे मरीज़ मुसलसल मुझ पर ज़ोर देते हैं कि मैं उन्हें कुछ और तरीक़ा बताऊं लेकिन मैंने यह उसूल बना लिया है कि उनमें वो मरीज़ जो लाइलाज हैं उनको तीन नहीं बल्कि एक महीने तक रोज़े रखवाये जायें। मैंने शुगर, दिल की बीमारियां और मेदे के मरीज़ों को मुस्तक़िल एक महीने तक रोज़े रखवाये। शुगर के मरीज़ों की हालत बेहतर हुई, उनकी शुगर कन्ट्रोल हो गयी। दिल के मरीज़ों की बेचैनी और सांस का फूलना कम हो गया, सबसे ज़्यादा फ़ायदा पेट के मरीज़ों को हुआ।

फ़ार्माकोलाजी के माहिर डॉक्टर लूथर जीम ने रोज़ेदार शख़्स के मेदे की रुतूबत ली और फिर उसका लेबोरेट्री टेस्ट करवाया इसमें उनहोंने महसूस किया कि वह गिज़ाई मुतअफ़न अजज़ा (Food Septic Particles) जिससे मेदा तेज़ी से बीमारियां कुबूल करता है बिल्कुल ख़त्म हो जाते हैं। डॉक्टर लूथर का कहना है कि रोज़ा जिस्म और ख़ासकर पेट की बीमारी में सेहत की ज़मानत है।

मशहूर माहिरे नफ़सियात सेग्मेन्ड फ़्राइड फ़ाक़ा और रोज़े का क़ायल था। उसका कहना था कि रोज़े से दिमाग़ी और नफ़सियाती बीमारियों का पूरी तरह से ख़ात्मा हो जाता है और रोज़ेदार आदमी का जिस्म मुसलसल बैरूनी दबाव को कुबूल करने की सलाहियत पा लेता है, रोज़ेदार को जिस्मानी खिंचाव और ज़हनी तवान से सामना नहीं पड़ता।

जर्मनी, अमरीका इंग्लैंड के माहिर डॉक्टरों की एक टीम ने रमज़ानुल मुबारक में तमाम मुस्लिम देशों का दौरा किया और यह नतीजा निकला कि रमज़ानुल मुबारक में चूंकि मुसलमान नमाज़ ज़्यादा पढ़ते हैं जिससे पहले वह वुज़ू करते हैं। उससे नाक, कान, गले की बीमारियां बहुत कम हो जाती हैं, खाना कम खाते हैं जिससे पेट व लिवर की बीमारियां कम हो जाती हैं, चूंकि मुसलमान दिनभर भूखा रहता है, इसलिए वह ऐसाबी और दिल की बीमारियों में भी कम पड़ता है।

ग़रज़ यह कि रोज़ा इन्सानी सेहत के लिये इन्तिहाई फ़ायदेमंद है। रोज़ा शुगर लेवल, कोलेस्ट्राल और ब्लड प्रेशर में एतदाल लाता है। स्ट्रेस व ऐसाबी और ज़हनी तनाव ख़त्म करके बेश्तर नफ़सियाती बीमारियों से छुटकारा दिलाता है। रोज़ा रखने से जिस्म में ख़ून बनने का अमल तेज़ हो जाता है और जिस्म की ततहीर हो जाती है। रोज़ा इन्सानी जिस्म के फ़ुज़लात और तेज़ाबी माद्दों का इख़्राज़ करता है रोज़ा रखने से दिमाग़ी ख़लियात भी फ़ाज़िल माद्दों से नजात पाते हैं। जिससे न सिर्फ़ नफ़िसयात व रूहानी बीमारियों का ख़ात्मा होता है बल्कि उससे दिमाग़ी सलाहियतों को जिलामिलकर इन्सानी सलाहियतें भी उजागर होती हैं। रोज़ा मोटापा और पेट को कम करने में भी मुफ़ीद है। ख़ा सतौर पर निज़ामे हज़म को बेहतर करता है इसके अलावा मज़ीद बीसियों बीमारियों का भी इलाज है।

रोज़ा और एहतियाती तदाबीरः याद रखना चाहिये कि मुन्दरजा बाला फ़वाएद तभी मुमकिन हो सकते हैं, जब हर सहर व इफ़्तार में सादा ग़िजा का इस्तेमाल करें। ख़ासकरके इफ़्तारी के वक़्त ज़्यादा सक़ील और मुरग़्ग़न तली हुई अशिया मसनल समोसे, पकौड़े, कचौरी वग़ैरह का इस्तेमाल कसरत से किया जाता है, जिससे रोज़े का रूहानी मक़सद तो फ़ौत होता ही है ख़ुराक की इस बेएतदाली से जिस्मानी तौर पर होने वाले फ़ायदे भी मफ़क़ूद हो जाते हैं बल्कि मेदा मज़ीद ख़राब हो जाता है, लिहाज़ा इफ़्तारी में दस्तरख़्वान पर दुनिया–जहान की नेमतें इकट्ठी करने के बजाय, इफ़्तार किसी फल, खजूर या शहद मिले दूध से कर लिया जाये और फिर नमाज़ की अदायगी के बाद मज़ीद कुछ खा लिया जाये। इस तरह दिन में तीन बार खाने का सिलसिला भी क़ायम रहेगा और मेदे पर बोझ नहीं पड़ेगा। इफ़्तारी में पानी, दूध या कोई भी मशरूब एक ही बार में ज़्यादा इस्तेमाल करने के बजाय रुक–रुक कर इस्तेमाल करें। इंशाअल्लाह एहतियाती तदाबीर पर अमलदरामद से यक़ीनन हम रोज़े के जिस्मानी व रूहानी फ़ायदे हासिल कर सकेंगे।

रोज़े की कुछ अनिवार्यताएं एवं मसले

रोज़े चाहे रमज़ान का हो चाहे किसी और चीज़ का। बहरहाल उनके लिये सहरी खाना सुन्नत है। रोज़े की शुरूआत सुबह–ए–सादिक (प्रातः काल का समय) के उदय होने से होती है और ये सूरज डूबने पर ख़त्म होता है। इसलिये शरीअत ने यह सहूलत दे रखी है कि रोज़ेदार सुबह होने से पहले सहरी खा ले ताकि रोज़े में ताक़त बहाल रहे। अलग–अलग हदीसों में आप स0अ0 ने इसका शौक़ दिलाया है। इसीलिये सहरी में सवाब होने पर उम्मत एकमत है। सहरी उतनी देर तक खायी जा सकती है कि सुबह होने की शंका न हो, रात के बचे होने का भी शक न हो। हज़रत ज़ैद बिन साबित रज़ि0 से रिवायत है कि हम लोग जब रसूलुल्लाह स0अ0 के साथ सहरी करते थे तो सहरी और फ़ज्र की अज़ान के बीच पचास आयत की तिलावत के बराबर का अन्तर होता था। आम तौर इतना कुरआन पांच–छः मिनट में पढ़ा जाता है।

अगर इस ख़्याल से सहरी खाई कि अभी सुबह नहीं हुई है हालांकि सुबह हो चुकी थी तो रोज़े की क़ज़ा वाजिब (अनिवार्य) होगी, कफ़्फ़ारा वाजिब (अनिवार्य) नहीं होगा, अगर शक हो कि शायद फ़ज्र का वक़्त हो गया तो बेहतर है कि खाना–पीना छोड़ दे फिर भी अगर खा ले और सुबह होने का यक़ीन न हो तो उसका रोज़ा हो जायेगा।

इसीलिये आप स0अ0 का इरशाद है: "सहरी खाओ सहरी में बरकत है।" (बुख़ारी 1923)

एक दूसरी हदीस में आप स0अ0 ने फ़रमायाः "हमारे और अहले किताब (यहूदी, इसाई इत्यादि) के रोज़ों में अन्तर और श्रेष्ठता सहरी खाने की है (हम खाते हैं और वो नहीं खाते हैं)।" (मुस्लिम 2550)

रही नियत तो इसके बग़ैर रोज़ा नहीं होगा। इसीलिये अगर एक व्यक्ति सुबह से शाम तक उन सभी चीज़ों से परहेज़ करे जिनसे रोज़ादार परहेज़ करता है लेकिन उसकी नियत रोज़ा रखने की न हो तो उसका रोज़ा नहीं होगा। इसीलिये आप स0अ0 का इरशाद है: "जो फ़ज्र से पहले ही नियत न करे उसका रोज़ा नहीं होगा।" (तिरमिज़ी 730)

कई दूसरी हदीसों को देखते हुए फ़ुक़्हा (धार्मिक विद्वान) ने फ़रमाया कि ज़वाल (अर्थात सूर्य का सर के ठीक ऊपर होना) से एक घन्टा पहले नियत कर ले किन्तु शर्त यह है कि कुछ खाया–पिया न हो तो रमज़ान का और नफ़िली रोज़ा रखना दुरूस्त होगा और नियत का केन्द्र क्योंकि दिल होता है इसलिये सिर्फ़ दिल में ये इरादा कर लेना काफ़ी है कि कौन सा रोज़ा रख रहा हूं ज़बान से कहना ज़रूरी नहीं यद्यपि बेहतर यही है कि ज़बान से भी कह दे। (हिन्दिया 1/195)

जिन चीज़ों से रोज़ा नहीं टूटता

भूल कर खाने–पीने, सर में तेल लगाने और नहाने–धोने से रोज़ा नहीं टूटता है। अगर दिन में सो जाये और एहतलाम (वीर्य स्खलित होना) हो जाये तो रोज़ा नहीं टूटता है। इसी तरह दिन में इन्जेक्शन लगवाने से रोज़ा नहीं टूटता है लेकिन बेहतर यही है कि अगर बहुत सख़्त ज़रूरत न हो तो इफ़्तार के बाद इन्जेक्शन लगवाये। मिस्वाक चाहे ताज़ी या हरी हो या ख़ुश्क और सूखी हो उससे रोज़ा नहीं टूटता है यद्यपि मन्जन इत्यादि करना मकरूह है और अगर मन्जन हलक़ के नीचे उतर जाये तो रोज़ा टूट जायेगा। अगर ज़बान से कोई चीज़ चखकर थूक दे तो रोज़ा नहीं टूटता, यद्यपि अनावश्यक ऐसा करना मकरूह है।

रमज़ान के महीने में अगर किसी का रोज़ा किसी वजह से टूट जाए तब भी उस पर अनिवार्य है कि रामज़ान के सम्मान में रोज़ेदार की तरह खाने–पीने से परहेज़ करे।

क़ज़ा व कफ़्फ़ारा वाजिब होने की सूरतें

रोज़े को तोड़ने वाली चीज़ें दो तरह की हैं। कई वो हैं जिनसे क़ज़ा और कफ़्फ़ारा दोनों लाज़िम होते हैं, और वो चीज़ें ये हैं:

पति–पत्नी का संबंध स्थापित करना, चाहे स्खलित (वीर्य निकलना) हो या न हो दोनों हालतों में रोज़ा टूट जायेगा और कफ़्फ़ारा ज़रूरी होगा। अगर ये काम औरत की रज़ामन्दी से हुआ तो उस पर भी कफ़्फ़ारा लाज़िम होगा और अगर उसकी रज़ामन्दी नहीं थी, पति ने ये काम ज़बरदस्ती से किया तो औरत पर केवल क़ज़ा ज़रूरी होगी, अगर शुरूआत में इसे मजबूर किय गया हो और बाद में उसकी रज़ामन्दी हो गयी हो तब भी उस पर केवल कज़ा ज़रूरी होगी।

जानबूझ कर ऐसी चीज़ खाना जिसको खाने के तौर पर और दवा इस्तेमाल किया जाता है, जैसे रोटी, चावल,

शरबत वग़ैरह या किसी दवा का इस्तेमाल करना।

इसके उल्टे अगर भूले से यह कर दे तो रोज़ा नहीं टूटेगा और कोई ऐसी चीज़ खाये जिसे खाने या दवा के तौर पर नहीं खाया जाता तो रोज़ा टूट जाएगा लेकिन सिर्फ़ क़ज़ा लाज़िम होगी कफ़्फ़ारा लाज़िम नहीं होगा, जैसे कोई कंकड़ी या लोहे का टुकड़ा खा ले।

इन चीज़ों से कफ़्फ़ारा वाजिब होने का ज़िक्र इशारे के साथ या खुले तौर पर हज़रत अबूहुरैरा रज़ि0 की इस हदीस में आया है। कहते हैं कि हम सब आप स0अ0 के पास बैठे हुए थे कि एक बद्दू ख़िदमत में हाज़िर हुआ और कहने लगा कि ऐ अल्लाह के रसूल! मैं तबाह हो गया। आप स0अ0 ने पूछा, क्या हुआ? उसने कहा कि मैंने रोज़े की हालत में पत्नी से संबंध स्थापित कर लिया, आप स0अ0 ने पूछा, क्या आज़ाद करने के लिये तुम्हारे पास ग़ुलाम है? उसने कहा, नहीं; आप स0अ0 ने फ़रमाया, तो क्या दो महीने लगातार रोज़ा रखते हो?उसने कहा, नहीं; आप स0अ0 ने फ़रमाया इतना माल है कि साठ ग़रीबों को खिला सकते हो? उसने कहा, नहीं। (बुख़ारी 1936– मुस्लिम 2595)

इससे पता चला कि संबंध स्थापित कर लेने से क़ज़ा व कफ़्फ़ारा दोनों ज़रूरी होंगे और इस बात की ओर इशारा भी मिला कि चूंकि खाना–पीना भी इसी दर्जे (श्रेणी) में है अतः इसका भी यही आदेश होगा। साथ ही कफ़्फ़ारे का तरीक़ा भी मालूम हुआ कि पहले नम्बर पर ग़ुलाम आज़ाद करना है, न कर सके जैसा कि वर्तमान समय में ग़ुलामी का दौर ख़त्म हो जाने के कारण किसी के लिये भी ये शक्ल सम्भव नहीं, तो दो महीने लगातार रोज़े रखे, अगर इन दो महीनों के बीच रमज़ान आ गया तो या अय्याम तश्रीक () आ गये तो क्रम टूट जायेगा और शुरूआत से रोज़े रखने पड़ेंगे। यही हुक्म उस वक़्त भी होगा जब बीमार हो जाये या औरत निफ़ास (प्रस्व रक्त) की हालत में हो जाये, क्रम उससे भी टूट जायेगा। यद्यपि अगर बीच में औरत को हैज़ (माहवारी) आ जाये तो वो रोज़े रखना बन्द कर दे, फिर जब हैज़ रुक जाये तो जितने रोज़े बाक़ी रह गये थे सिर्फ़ वही रख ले फिर से रखने की ज़रूरत नहीं है।

अगर किसी को खाने पर जान व माल की धमकी देकर मजबूर किया गया, और उसने ख़ौफ़ (भय) से खा लिया तो रोज़ा टूट जायेगा लेकिन सिर्फ़ क़ज़ा ज़रूरी होगी। यही हुक्म उस समय होगा जब ग़लती से कुछ खा–पी ले, यानि रोज़ा याद था, खाने–पीने का इरादा नहीं था लेकिन खाने–पीने की चीज़ हलक़ से उतर गयी, तो ऐसी सूरत में रोज़ा टूट जायेगा और सिर्फ़ क़ज़ा वाजिब होगी।

अगर कोई ऐसी चीज़ खाई या पी जिसको बतौर दवा या ग़िज़ा नहीं खाया–पिया जाता है जैसे कन्करी वग़ैरह।

दांतों में कोई चीज़ अटकी हुई थी, अगर वो चने के बराबर या उससे बड़ी थी तो उसके निगलने से रोज़ा टूट जायेगा और क़ज़ा होगी और अगर चने से छोटी थी तो रोज़ा नहीं टूटेगा लेकिन ये उस वक़्त होगा जब मुंह से न निकाला हो अगर निकाल कर खाये तो चीज़ छोटी हो या बड़ी रोज़ा टूट जायेगा।

अगर हक़्ना (पचना) लगाया या नाक के अन्दरूनी हिस्से में दवा डाली या कान में तेल या कोई दवा डाली या औरत ने अपनी शर्मगाह में दवा डाली तो रोज़ा टूट जायेगा और केवल क़ज़ा ज़रूरी होगी लेकिन अगर आंख में दवा डाली या सुरमा लगाया तो रोज़ा नहीं टूटेगा, इसी तरह अगर कान में पानी डाला तब भी रोज़ा नहीं टूटेगा।

अगर अगरबत्ती या लोबान सुलगाई फिर उसको सूंघा और धुआं अन्दर चला गया तो रोज़ा टूट जायेगा। इसी तरह सिगरेट, बीड़ी इत्यादि से रोज़ा टूट जायेगा।

क़ै (उल्टी) के बारे में लोगों में आम तौर से ये ग़लत फ़हमी पायी जाती है कि चाहे जिस तरह की भी क़ै हो रोज़ा टूट जायेगा, इसलिये क़ै के सिलसिले में आप स0अ0 ने इरशाद फ़रमायाः

जिसको रोज़े की हालत में खुद से क़ै हो जाये उस पर क़ज़ा नहीं है और जो जानबूझ कर क़ै करे उस क़ज़ा ज़रूरी है। (तिरमिज़ी)

इस हदीस के आधार पर फ़ुक़्हा (धार्मिक विद्वानों) ने फ़रमायाः क़ै कि कई सूरतें हो सकती हैं लेकिन रोज़ा केवल दो सूरतों में टूटता है, एक ये कि मुंह भर के हो और रोज़ेदार इसको निगल ले, चाहे पूरी क़ै या चने के बराबर या उससे ज़्यादा को निगले। दूसरे ये कि जानबूझ कर क़ै करे और मुंह भर के क़ै हो, बक़िया किसी और तरह की क़ै से रोज़ा नहीं टूटता है।

पान, तम्बाकू और सिगरेट–बीड़ी का हुक्म

इसी हुक्म में पान तम्बाकू और सिगरेट इत्यादि भी हैं। पान तम्बाकू की पीक अगर कोई निगल लेता है तो बिल्कुल साफ़ बात है कि उसने एक चीज़ हलक़ से नीचे उतार ली। अतः इससे रोज़े के चले जाने में कोई शक की बात ही नहीं

है लेकिन कुछ लोग पीक निगलते नहीं है सिर्फ़ पान व तम्बाकू चबाकर उसे थूक देते हैं। इसलिये कुछ लोगों को शक होता है कि उससे शायद रोज़ा नहीं टूटता क्योंकि फ़ुक़्हा किराम ने फ़रमाया है कि किसी चीज़ के चबाने से रोज़ा नहीं टूटता और इस शक्ल में सिर्फ़ चीज़ को चबाया गया खाया नहीं गया लेकिन ये शक ठीक नहीं है इसलिये कि खाने–पीने को रोज़ा तोड़ने वाला बताया गया है और उन चीज़ों के चबाने को भी खाना कहते हैं फिर कुछ पान या उसका पीक तो बहरहाल हलक़ के नीचे उतर जाता है साथ ही इसके आदी लोगों को इसमें ख़ास लज़्ज़त (विशेष मज़ा) मिलती है अतः न केवल यह कि उनसे रोज़ा टूट जायेगा। बल्कि अगर उन चीज़ों को जानबूझ कर इस्तेमाल किया गया तो कफ़्फ़ारा भी लाज़िम होगा।

इसी हुक्म में गुल से दांत मांजना भी है। इसलिये कि इसमें भी ख़ास लज़्ज़त मिलती है और कुछ हिस्सा के अन्दर जाने का बहुत हद तक संभावना रहती है।

जहां तक बीड़ी–सिगरेट इत्यादि का संबंध है तो उसमें जानबूझ कर धुआं अन्दर लिया जाता है और जानबूझ कर धुआं अन्दर लेने से रोज़ा टूट जाता है। अतः इन सारी चीज़ों से परहेज़ ज़रूरी है।

मन्जन और टूथपेस्ट का हुक्म

आप स0अ0 ने मिस्वाक की बड़ी ताकीद फ़रमायी (ज़ोर दिया) है। इस एतबार से फ़ुक़्हा ने रमज़ान में भी मिस्वाक करने की इजाज़त दी है चाहे मिस्वाक की लकड़ी सूखी हो या गीली लेकिन अगर मिस्वाक की तरी उसकी हलक़ के नीचे उतर जाये तो रोज़ा टूट जाता है लिहाज़ा रोज़े की हालत में मिस्वाक करते हुए इसका ख़्याल रखना चाहिये कि मिस्वाक की तरी या लकड़ी का कोई हिस्सा हलक़ से नीचे न उतरने पाये।

जहां तक मन्जन व टूथपेस्ट इत्यादि का संबंध है तो उनका हुक्म मिस्वाक के हुक्म से अलग है इसलिये कि इनमें ज़ायक़ा बहुत बढ़ा हुआ होता है। अतः जिस तरह फ़ुक़्हा (धर्मज्ञाताओं) ने फ़रमाया कि किसी ज़रूरत के बग़ैर किसी चीज़ का चबाना मकरूह है। उसी तरह इन सब चीज़ों का भी हुक्म होगा। यद्यपि किसी ख़ास ग़रज़ से अगर उन चीज़ों से दांत साफ़ करे तो इन्शाअल्लाह कराहत नहीं होगी।

आक्सीजन का हुक्म

दमे के मरीज़ को दौरा पड़ने के वक़्त आक्सीजन दी जाती है। रोज़े की हालत में इस तरह आक्सीजन लेने का क्या हुक्म होगा? फ़िक़्ही ज़ुज़ () को सामने रखा जाये तो ख़्याल होता है कि अगर होता है कि अगर आक्सीजन के साथ कोई दवा न हो तो रोज़ा नहीं टूटना चाहिये क्योंकि ये सांस लेना है और सांस लेने के ज़रिये हवा लेने से रोज़ा नहीं टूटता है और न उसे खाने–पीने में गिना जाता है। अगर इसके साथ दवा के कण भी हों तो फिर उससे रोज़ा टूट जायेगा। (जदीद फ़िक़्ही मसले : 188/1)

जहां तक दमे के मरीज़ के लिये इन्हेलर के प्रयोग का संबंध है तो चूंकि इसमें दवा मिली हुई होती है लिहाज़ा इससे रोज़ा टूट जायेगा।

इन्जेक्शन और ड्रिप लगवाना

उलमा की सहमति इसी पर है कि इन्जेक्शन चाहे किसी भी प्रकार का हो उससे रोज़ा नहीं टूटेगा चाहे रग में लगाया जाये या गोश्त में। यही हुक्म ड्रिप लगवाने का भी है, लेकिन बग़ैर किसी ग़रज़ के बेहतर यही है कि दिन में न लगवाये, ज़रूरत हो तो दिन में भी लगवा सकता है, लेकिन सिर्फ़ इस मक़सद से ड्रिप लगवाना कि बदन में ताक़त आ जाये और प्यास में कमी हो जाये मकरूह है।

ज़बान के नीचे दवा रखना

फ़ुक़्हा ने अनावश्यक किसी चीज़ को मुंह में रखने और चखने को मकरूह घोषित दिया है, यद्यपि यह स्पष्ट किया गया है कि अगर किसी कारण से ऐसा करे तो कराहत नहीं होगी। कारण की मिसाल में फ़ुक़्हा ने लिखा है कि शौहर अगर बदअख़लाक (दुर्व्यवहरी) और सख़्त मिज़ाज वाला हो तो उसकी बीवी के लिये नमक इत्यादि का पता लगाने के लिये चखना जायज़ होगा। लेकिन साथ ही ये साफ़ है कि अगर कोई ऐसी चीज़ मुंह में रखी या चबाई जिसका हलक़ के नीचे उतर जाना विश्वस्नीय है तो रोज़ा टूट जायेगा। इसकी मिसाल में फ़ुक़्हा ने कुछ गोंदो का नाम लिया है। शायद इसी वजह से हमारे उलमा ने पान तम्बाकू इत्यादि के मुंह में रखने को रोज़ा तोड़ने वाला बताया है। इसलिये कि इसका असर साफ़ तौर पर हलक़ के नीचे पहुंच जाते हैं और तम्बाकू की तलब पूरी हो जाती है।

इस व्याख्या के बाद हम आसानी से फ़ैसला कर सकते हैं कि "इन्जाइना" (दिल का रोग) के मरीज़ों के लिये इस ज़रूरत से कहीं बढ़कर है जिसके तहत बीवी को नमक चखने की छूट दी गयी है और सवाल केवल ये रह जाता है

कि ये दवा हलक़ के नीचे तो नहीं उतरती?अगर एहतियात के बावजूद दवा के ज़र्रात ख़ास गोंद की तरह हलक़ के नीचे उतर जाते हों तो उसके मुंह में रखने से रोज़ा टूट जायेगा और ज़बान के नीचे रखने के बाद तबियत बेहतर हो जाने से लगता है ज़ाहिरी तौर पर यही बात है। लेकिन विशेषज्ञों की राय है कि ऐसा नहीं है, इसको देखते हुए कहा जा सकता है कि जहां तक हो सके रोज़ेदार इस गोली का इस्तेमाल न करे लेकिन इसके इस्तेमाल से रोज़ा उसी वक़्त टूटेगा जब दवा मिला हुआ लुआब (एक प्रकार का थूक) हलक़ के नीचे उतर जाये। सिर्फ़ जबान के नीचे गोली रखना रोज़ा टूटने की वजह नहीं होगी।

इन्हेलार का इस्तमाल

जिन लोगों को दमे की शिकायत होती है उनको इन्हेलर के ज़रिये दवा का इस्तेमाल करना पड़ता है। इसके ज़रिये पाउडर का बहुत छोटा कण फेफड़ों तक पहुंचाया जाता है। इलाज के इस तरीक़े के ज़रिये दवा के इस्तेमाल से रोज़ा टूट जायेगा। इसलिये फ़िक़ के नज़रिये से साफ़ ज़ाहिर हो रहा है कि मनाफ़िज़–ए–अस्लिया (मुंह, दिमाग, नाक, कान, अगली–पिछली शर्मगाहें) से जब किसी चीज़ को दाख़िल किया जा रहा हो तो केवल दाख़िले से रोज़ा टूट जाता है और इन्हेलर के इस्तेमाल में बहरहाल दख़ल होता है चाहे दवा कम ही क्यों न हो।

भाप की शक्ल में दवा का इस्तेमाल

निमोनिय और कई दूसरी बीमारियों में भाप के ज़रिये भी दवा इस्तेमाल की जाती है। ये इस्तेमाल कभी दवा को पानी में डालकर और पानी को खौलाकर उसकी भाप मुंह और नाक से लेकर किया जाता है और कभी ये काम कुछ यन्त्रों के द्वारा किया जाता है। बहरहाल भाप चाहे किसी भी यन्त्र की मदद से ली जाये या सादा तरीक़े से, दोनों हालतों में रोज़ा टूट जायेगा, इसके लिये फ़ुक़्हा ने साफ़ किया है कि जानबूझ कर धुआं हलक़ के नीचे उतारने से रोज़ा टूट जाता है और ये बात इसमें पूरी तरह से पायी जाती है।

बवासीरी मस्सों पर मरहम लगाने का आदेश

अगर पीछे के रास्ते से किसी दवा का प्रयोग किया जाए और दवा हुक़्ना (पिछली शर्मगाह का भीतरी भाग) लगाने के स्थान तक पहुंच जाए तो रोज़ा टूट जाता है। इसलिए फ़ुकहा ने इसको भी हुक़्ना लगाने के स्थान में सम्मिलित किया हैं जबकि फ़ुकहा ने स्पष्ट किया है कि यदि दवा हुक़्ना लगाने के स्थान तक न पहुंचे तो रोज़ा नहीं टूटेगा।

इस व्याख्या से स्पष्ट हो गया है कि कोई दवा या मरहम लगाने से या इसको पानी से तर करके चढ़ाने से रोज़ा नहीं टूटेगा इसलिए कि जानकारों का कहना है कि बवासीरी मस्से हुक़्ना लगाने के स्थान से बहुत नीचे होते हैं।

रोग की पुष्टि के लिए यन्त्रों का प्रयोग

अगर रोग की खोज के लिए पीछे के गुप्तांग में किसी यन्त्र की सहायता ली जाए तो अगर यह यन्त्र सूखे हैं और इनका एक सिरा बाहर है जैसा कि आमतौर पर होता है तो इन यन्त्रों को अन्दर डालने से रोज़ा नहीं टूटेगा लेकिन अगर यन्त्र पर कोई तेल या ग्रीस जैसी चीज़ लगाकर इसे अन्दर किया गया है तो रोज़ा टूट जाएगा।

यही हुक्म औरत की अगली शर्मगाह तहक़ीक़ (खोज) के लिये किसी यन्त्र के डालने का भी है।

गर्भ तक यन्त्र का पहुंचाना

गर्भ की सफ़ाई के लिये और फ़मे रहम () को बढ़ाने के लिये जो यन्त्र (क्पसंजवते) प्रयोग किये जाते हैं और गर्भ का अन्दरूनी हिस्सा खुरचने का यन्त्र (ब्नतमजजम) यदि उन पर कोई तेल इत्यादि लगाकर उनको प्रविष्ठ कराया जाये तो रोज़ा टूट जाएगा और अगर सूखा डाला जाए तो रोज़ा नहीं टूटेगा।

लेकिन यदि सूखा डालकर और एक बार बाहर निकालकर दोबारा साफ़ किये बिना उनको फिर डाला जाए तो रोज़ा टूट जाएगा चाहे दोबारा सूखा हो गीला।

औरत की शर्मगाह में दवा कर रखना

यदि आन्तिरक भाग में कोई दवा रखी जाए या रखी ऊपरी हिस्से में जाए वह अन्दरूनी हिस्से तक पहुंच जाए तो रोज़ा टूट जाएगा, चाहे दवा गीली हो या सूखी।

पेशाब के स्थान तक नली का पहुंचना

यदि मर्द के मुसाना तक नली पहुंचाई जाये तो इससे रोज़ा नहीं टूटेगा चाहे नली सूखी हो या गीली इससे दवा पहुंचाई जाए या नहीं और औरत के मुसाना में नली पहुंचाई जाए तो यदि नली गीली है तो या इससे दवा पहुंचाई गई है तो रोज़ा टूट जाएगा लेकिन अगर नली सूखी हो और इससे दवा भी न पहुंचाई गई हो तो रोज़ा नहीं टूटेगा।

ज़कात के फ़ज़ाएल व मसाएल

मुफ्ती सादिक़ हुसैन क़ासमी

इस्लाम की इमारत जिन सुतूनों पर क़ायम है उनमें से एक अज़ीम व अहम सुतून ज़कात है। जो इस्लामी फ़राएज़ में से और इस्लाम की बुनियादी तालीमात में से है। और यह इस्लाम ही की देन है कि उसने ज़कात की शक्ल में एक ऐसा हमदर्दी व ग़मख़्वारी और मसावात व बराबरी का निज़ाम पेश फ़रमाया कि जिसकी नज़ीर मज़ाहिबे आलम में नहीं मिलती। माल जो अल्लाह की एक अज़ीम नेमत है। उसका सही इस्तेमाल और मुन्सिफ़ाना तक़सीम का ज़कात में बेमिसाल पैग़ाम दिया गया। कुरआने करीम में सत्तर से ज़्यादा मक़ामात पर नमाज़ के साथ ज़कात को बयान किया गया। ज़कात को अदा करने से बेशुमार फ़वाएद व बरकात हासिल होते हैं और ईमान वालों की अख़लाक़ी व रूहानी तरबियत भी होती है। दुनियावी एतबार से भी और उख़रवी लिहाज़ से भी। बन्दा–ए–मोमिन को उसके असरात व समरात मिलते हैं।

कुरआन करीम में जिस ताकीद के साथ नमाज़ क़ायम करने का हुक्म दिया गया है उसी ताकीद के साथ ज़कात अदा करने की अहमियत को बयान किया गया है। कुरआने करीम में जहां कहीं भी इन्फ़ाक़ फ़ी सबीलिल्लाह का हुक्म दिया गया है वहां पूरे एहतिमाम के साथ यह बात कही गयी है कि जो कुछ हमने तुमको दिया है उसमें से ख़र्च करो यानि बन्दे को उसकी तलक़ीन की गयी कि यह माल व मताअ और दौलत व सरवत जो इन्सान के पास मौजूद है वह दरअस्ल अल्लाहत आला की अता करदा नेमत है। इस माल को जब बन्दा हुक्मे ख़ुदावन्दी के मुताबिक़ ख़र्च करता है और माल के जो हुक़ूक़ आयद होते हैं उसको अदा करता है तो उसकी वजह से बाक़ी माल की ततबीर हो जाती है। ज़कात इस्लाम के फ़राएज़ और अरकान में से एक है। कुरआन व हदीस में जाबजा उसको अदा करने का हुक्म दिया गया है और उसकी अदायगी में माल व दौलत की ख़ैर व बरकत को पोशीदा बताया है।

ज़कात की अहमियत को कुरआन व हदीस में बहुत जगह ज़िक्र किया और अदायगीये ज़कात में कोताही और लापरवाही करने वालों के बारे में सख़्त वईदें भी बयान की गयी हैं। चुनान्चे हज़रत अबहुरैरा रज़ि0 से मरवी है कि नबी करीम स0अ0 ने फ़रमाया कि जो कोई भी सोने और चांदी का मालिक हो और उसका हक़ अदा न करे तो क़यामत के दिन उसके लिये आग के पतरे तैयार किये जायेंगे, जिन्हें जहन्नम की आग में तपाकर उसके पहलू, पेशानी और पीठ को दाग़ा जायेगा और जब एक पतरा तपाया जायेगा तो उसकी जगह दोबारा लाया जायेगा, ऐसे दिन में जिसकी मिक़दार पचास हज़ार साल होगी यहां तक कि बन्दों के दरमियान फ़ैसले की कार्यवाही पूरी हो, फिर उसे मालूम होगा कि उसका ठिकाना जन्नत है या जहन्नम। (मुस्लिम)

एक जगह इरशाद है कि जिस शख़्स को अल्लाह तआला माल व दौलत से नवाज़े फिर वह उसका हक़ अदा न करे तो वह माल उसके सामने क़यामत के दिन गंजे सांप की शक्ल में लाया जायेगा, जिसकी आंख के ऊपर दो सियाह नुक़्ते हो (जो इस सांप के शदीद ज़हरीले होने की निशानी है) यह सांप उस मालदार के गले में क़यामत के रोज़ तौक़ बन जायेगा, फिर उसका जबड़ा पकड़कर कहेगा कि मैं हूं तेरा माल, मैं हूं तेरा ख़ज़ाना।

ज़कात अदा करने की वजह से जो ख़ैर व बरकत एक मुसलमान हासिल करता है अगर उनको इरशादाते नबवी की रोशनी में देखें तो उसकी अहमियत मालूम होगी। आप स0अ0 ने फ़रमायाः जिस शख़्स ने अपने

माल की ज़कात अदा कर दी उसने उसके शर को दूर कर दिया। (बैहिक़ी)

एक जगह आप स0अ0 ने फ़रमाया कि जब तुमन अपने माल की ज़कात अदा की तो तुम पर जो ज़िम्मेदारी आयद होती थी उससे तुम सुबुकदोश हो गये। (मुस्लिम)

एक हदीस में आप स0अ0 ने इरशाद फ़रमाया कि अपने मालों को ज़कात के ज़रिये महफ़ूज़ करो, अपने बीमारों का सदक़े से इलाज करो, और मसाएब के तूफ़ानों का दुआ व तज़र्रअ से मुक़ाबल करो। (बैहिक़ी)

इन हदीसों से मालूम हुआ कि ज़कात अदा करने की वजह से बाक़ी माल महफ़ूज़ भी हो जाता है और वह माल इन्सान के लिये वबाल और हलाकत का सबब भी नहीं बनता वरना तो नबी करीम स0अ0 ने फ़रमाया कि माले ज़कात जब दूसरे माल में मख़लूत होगा तो ज़रूर उसको तबाह कर देगा। (मारिफ़ुल हदीस)

ज़कात की शक्ल में बन्दा जहां एक फ़रीज़े की अदायगी करता है वहीं सदक़ा व ख़ैरात करने वाले सआदतंमद लोगों में भी उसका शुमार होता है। और सदक़ा व ख़ैरात के बारे में जहां क़ुरआन करीम में बेशुमार बरकात के हासिल होने का ज़िक्र है वहीं नबी करीम स0अ0 ने भी उसके ज़रिये मिलने वाली बरकतों का ज़िक्र करते हुए फ़रमाया कि सदक़ा अल्लाह के ग़ज़ब को ठण्डा करता है और बुरी मौत को दफ़ा करता है। (तिरमिज़ी)

आप स0अ0 ने यह भी फ़रमाया कि सदक़े के माल में कमी नहीं आती बल्कि इज़ाफ़ा ही होता है। (मुस्लिम)

एहकामे शरीअत और तालीमाते इस्लामी में अल्लाह तआला ने जहां दीनी नफ़ा और उख़रवी कामयाबी को मुज़म्मर रखा वहीं दुनियावी फ़वाएद और ज़ाहिरी मुनाफ़े भी रखे हैं। चुनान्चे ज़कात ही के निज़ाम को देखिये कि उससे जहां एक बन्दा अल्लाह तआला की बन्दगी का एतराफ़ करता है और अपना माल व मताअ हुक्मे ख़ुदावन्दी के मुताबिक़ मख़सूस अंदाज़ में लुटाता है, साथ ही बेशुमार हिस्सी फ़वाएद से भी मालामाल होता है और उसके नतीजे में दुनियावी भलाई से भी हमकिनार होता है। हज़रत शाह वली उल्लाह मुहद्दिस देहलवी इसकी हिकमतें और ज़ाहिरी फ़वाएद बयान करते हुए लिखते हैं कि ज़कात में ज़ाति मसलहत यह है कि वह नफ़्स को संवारती है और उसकी चार सूरतें हैं:

पहला है इन्फ़िाक़ से बुख़्ल का इज़ाला होता है।

कभी इन्फ़ाक़ का इल्हाम होता है तो उस इन्फ़िाक़ से नफ़्स ख़ूब संवरता है।

इन्फ़ाक़ जज़्बा–ए–तरहुम पैदा करता है।

इन्फ़िाक़ से गुनाह माफ़ होते हैं और नफ़्स मुज़की होता है। इन्फ़िाक़ से मुमलिकत को नफ़ा पहुंचता है और उसकी दो सूरते हैं। पहला है इन्फ़िाक़ से कमज़ोरों को सहारा और हाजतमंदों को ताउन मिलता है।

इन्फ़िाक़ से हुकूमत की ज़रूरियात पूरी होती हैं और रिफ़ाही काम अंजाम पाते हैं। (रहमतुल अलवास्ता)

ज़कात के लुग्वी माने ज़्यादती यानि इज़ाफ़ा के हैं। शरई इस्तिलाह में ज़कात कहते हैं माल के मख़सूस हिस्से व हक़ को मख़सूस तरीक़े पर अदा करना और उसके वाजिब होने के लिये साल का मुकम्मल होना और निसाब के बक़द्र होना। (अलमोसियातुल फ़िक़हिया)

ज़कात से मुताल्लिक़ चंद मसाएल ज़ेल में ज़िक्र किये जा रहे हैं।

सोने का निसाब अरबी औज़ान के एतबार से बीस मिसक़ाल है जिसका वज़न तोले के हिसाब से 7.5 तोला और ग्रामों के एतबार से 87ग्राम 480 मिलीग्राम होता है। चांदी का निसाब अरबी औज़ान के एतबार से दो सौ दिरहम है जिसका वज़न तोले के हिसाब से 52.5 तोला और ग्रामों के एतबार से 612 ग्राम 360 मिली ग्राम होता है। (किताबुल मसालए)

ज़कात का कुल माल का चालिसवां हिस्सा यानि 2. 5 फ़ीसदी देना ज़रूरी है। (किताबुल मसालए)

क़मरी महीने की जिस तारीख़ में आप साहिबे निसाब हुए हैं हमेशा वही तारीख़ ज़कात के निसाब के लिये मुतअययन रहेगी। नीज़ उस तारीख़ में आप के पास सोना, चांदी, माले तिजारत और नक़दी जो कुछ भी हो चाहे एक दिन पहले ही मिला हो सब पर ज़कात फ़ज़ होगी। (अहसनुल फ़तावा)

अगर किसी का क़र्ज़ हो तो उसको मिन्हा करके

ज़कात वाजिब होती है। सिनअती और तरक़्क़ियाती कर्ज़ जो सरकारी या ग़ैर सरकारी इदारों से हासिल किये जाते हैं और उन्हें तवील मुद्दत (10–12 साल) में अदा करना होता है, उसमें उसूल यह है कि हर साल कर्ज़ की जितनी रक़म क़िस्त की अदा करनी है उस साल उतनी रक़म मिन्हा करके ज़कात का हिसाब किया जायेगा न कि पूरे क़र्ज़ का। (किताबुल फ़तावा)

ज़कात की अदायगी के लिये नियत ज़रूरी है। फ़क़ीरों को ज़कात देते वक़्त या वकील को सुपुर्द करते वक़्त या कुल माल से अलग करते वक़्त ज़कात की नियत ज़रूरी है।

जो प्लाट या ज़मीन फ़रोख़्त करने की नियत से ख़रीदे गये हैं तो उनकी मौजूदा क़ीमत पर ज़कात वाजिब होगी। (किताबुल मसालए)

जिस शख़्स ने मकान बनाने के लिये प्लाट ख़रीदा फिर इरादा बदल गया कि क़ीमत बढ़ जाने पर इसको फ़रोख़्त कर दूंगा तो उस पर ज़कात उस वक़्त तक वाजिब नहीं है जब तक कि उसे फ़रोख़्त न कर दे। फ़रोख़्तगी के बाद ही रक़म पर ज़कात अदा करना लाज़िम होगा। (फ़तावा क़ासमिया)

जिस शख़्स ने तिजारत की नियत से प्लाट ख़रीदा फिर इरादा बदल गया कि इसमें मकान बनाना है तो अब उस पर ज़कात वाजिब नहीं होगी। (फ़तावा क़ासमिया)

जो ज़मीन ज़ाति तामीर के लिये ख़रीदी है उसमें ज़कात वाजिब नहीं है। अलबत्ता जो ज़मीन तिजारत के लिये ख़रीदी है उसकी पूरी मालियत पर ज़कात वाजिब होगी। (किताबुल नवाज़िल)

अगर ज़मीन या जायदाद नाबालिग़ों के नाम मालिकाना हैसियत से ख़रीदी जाये। वाक़्यतन उन्हें मालिक ही बनाना मक़सूद हो, महज़ किसी मसलहत से उनका नाम डालना पेशेनज़र न हो तो उन नाबालिग़ों पर ज़कात वाजिब नहीं है। (किताबुल नवाज़िल)

अगर बाप–मां ने बच्ची या बच्चे की शादी के लिये ज़ेवरात बनाकर रखे हैं और वो अभी बच्चों के हवाले नहीं किये गये बल्कि अपनी ही मिल्कियत में हैं तो उनकी मालियत पर हस्बे ज़ाबता ज़कात मां–बाप पर वाजिब रहेगी। और अगर बच्चों की मिल्कियत में दे दिये गये हैं तो जब तक कि वह नाबालिग़ हैं उन पर ज़कात न होगी और बालिग़ होने के बाद अगर निसाब वग़ैरह की शराएत पूरी होती हों तो साल गुज़रने पर उन पर ज़कात वाजिब होगा। (किताबुल मसालए)

नाबालिग़ के माल में ज़कात वाजिब नहीं है। (फ़तावा रहीमिया)

सफ़र का किराया और मक्का मुकर्रमा में क़याम के दौरान होने वाले लाज़िमी एख़राजात, उसकी हाजते अस्लिया यानि बुनियादी ज़रूरियात में दाख़िल है उनमें ज़कात वाजिब नहीं। इससे ज़ायद जो रक़म हाजी अपने तौर पर सफ़रे हज में ख़र्च करता है वह हाजते अस्लिया में दाख़िल नहीं उसकी ज़कात वाजिब होगी। (किताबुल फ़तावा)

जो ज़ेवर रेहन पर हो उसकी ज़कात वाजिब नहीं। (किताबुल फ़तावा)

जो रक़म मकान बनाने या शादी की नियत से रखी जाये साल गुज़रने पर उस रक़म की ज़कात अदा करना भी लाज़िम और वाजिब है। (फ़तावा क़ासमिया)

दो क़िस्म के रिश्तेदारों को ज़कात नहीं दी जा सकती है। एक वह जिनसे वालिदैन और औलाद का रिश्ता है यानि अपने वालिदैन और उनके आबाई सिलसिले जैसे दादा–दानी, नाना–नानी वग़ैरह को ज़कात नहीं दी जा सकती। उसी तरह औलाद और औलाद के सिलसिले यानि पोते–पोतियां, नवासे–नवासियां और उनकी औलाद की औलाद वग़ैरह को ज़कात नहीं दी जा सकती।

दूसरे इज्दिवाजी रिश्ते भी माने ज़कात हैं। यानि बीवी–शौहर को या शौहर–बीवी को ज़कात नहीं दे सकता है। उनके अलावा दूसरे रिश्तेदारों जिनमें भाई–बहन भी शामिल हैं को ज़कात दी जा सकती है। (किताबुल फ़तावा)

बाप–दादा औलाद और शौहर–बीवी के अलावा बक़िया सब ज़रूरदमंद रिश्तेदारों मसनल भाई–बहन, चचा–चची, फूफ़ी–मामू और भांजे वग़ैरह को ज़कात देना दुरूस्त व अफ़ज़ल हैं।

एतिकाफ़

एतिकाफ़ अरबी ज़बान का एक शब्द है जिसका अर्थ ठहरने और स्वंय को रोक लेने का है। शरीअत के अनुसार मस्जिद के अन्दर नियत के साथ अपने आप को कुछ विशेष चीज़ों से रोके रखने का नाम एतिकाफ़ है। रसूलल्लाह स0अ0 ने एतिकाफ़ के ख़ास फ़ाएदे बयान किये हैं। आप स0अ0 ने फ़रमाया कि एतिकाफ़ की हालत में एतिकाफ़ करने वाला गुनाहों से तो दूर रहता ही है और मस्जिद से बाहर न निकलने की वजह से जिन नेकियों से वंचित रहता है वो नेकियां भी अल्लाह तआला के करम से उसकी नेकियों में शामिल हो जाती हैं। रसूलल्लाह स0अ0 ने जिस पाबन्दी से एतिकाफ़ फ़रमाया उम्मुलमोमिनीन हज़रत आयशा रज़ि0 कहती हैं कि आप स0अ0 वफ़ात तक बराबर रमज़ानुल मुबारक के आख़िरी दस दिनों में एतिकाफ़ फ़रमाते रहे। फिर आप स0अ0 के बाद आप की बीवियों ने भी एतिकाफ़ फ़रमाया। दस दिन का एतिकाफ़ आप स0अ0 का नियम था। एक साल एतिकाफ़ न कर सके तो दूसरे साल बीस दिन का एतिकाफ़ फ़रमाया।

एतिकाफ़ के प्रकार

फ़ुक़हा ने आदेश और महत्व के आधार पर एतकाफ़ की तीन क़िस्में बयान की हैं।वाजिब, मसनून, मुसतहब

वाजिब एतिकाफ़ : किसी नज़र और मन्नत मांगने की वजह से दूसरी इबादतों की तरह एतिकाफ़ भी वाजिब हो जाता है। एतिकाफ़ कम से कम एक दिन का होगा उससे कम का नही और उसकी नज़र के समय रोज़ा रखने की नियत हो या न की हो, बहरहाल रोज़ा रखना आवश्यक होगा।

मसनून एतिकाफ़ : रमज़ानुल मुबारक के आख़िरी दस दिनों में एतिकाफ़ सुन्नते मुएक्कदा अलल किफ़ाया है यानि अगर किसी एक व्यक्ति ने एतिकाफ़ कर लिया तो सभी पर से सुन्नत को तर्क करने का गुनाह ख़त्म हो जाएगा; और अगर किसी ने नहीं किया तो सुन्नत को तर्क करने के गुनहगार होंगे। एतिकाफ़ मसनून के लिए रोज़ा ज़रूरी है।

एतिकाफ़ का तरीक़ा ये है कि बीस रमज़ानुल मुबारक को अस्र के बाद सूरज डूबने से पहले एतिकाफ़ की नियत से मस्जिद में दाख़िल हो जाए और उन्तीस रमज़ानुल मुबारक को ईद का चांद होने के बाद या तीस तारीख़ को सूरज डूबने के बाद वापस आ जाए।

नफ़िल एतिकाफ़ : नफ़िल एतकाफ़ में न रोज़ा की शर्त है न मस्जिद में रात गुज़ारने की और न दिनों की कोई संख्या है जितने दिन और जितने क्षणों का चाहे एतिकाफ़ कर सकता है उसका तरीक़ा ये है कि मस्जिद में दाख़िल होते समय एतिकाफ़ की नियत कर ले। इस प्रकार जब तक वो मस्जिद में रहेगा एतिकाफ़ का सवाब मिलता रहेगा और जब बाहर आ जाएगा तो एतिकाफ़ ख़त्म हो जाएगा।

एतिकाफ़ की शर्तें

एतिकाफ़ सही होने के लिए एतिकाफ़ करने वाले का मुसलमान और बालिग़ होना, नियत का होना, मर्द का नापाकी व औरत का माहवारी से पाक होना और ऐसी मस्जिद में एतिकाफ़ करना जिसमें पांच वक्त की नमाज़ अदा की जाती हो शर्त है। बालिग़ होना ज़रूरी नही बालिग होने के निकट और समझदार नाबालिग़ भी एतिकाफ़ कर सकते हैं। वाजिब और मसनून एतिकाफ़ के लिए रोज़ा रखना भी ज़रूरी है।

एतिकाफ़ की बेहतर जगह

एतिकाफ़ उन इबादतों में से है जिसकी अदाएगी मस्जिद में होनी चाहिए, कहीं और बैठ जाना काफ़ी नही इसलिए कि यही रसूलल्लाह स0अ0 का नियम रहा है और हज़0 अली रज़ि0 से रिवायत है कि आप स0अ0 ने फ़रमाया कि एतिकाफ़ केवल मस्जिद में ही होता है। एतिकाफ़ के लिए मर्दों के हक़ में सबसे बेहतर मस्जिदे हराम फिर मस्जिदे नबवी फिर मस्जिदे अक़्सा और फिर शहर की जामा मस्जिद जहां नमाज़ी अधिक आते हों और फिर अपने मोहल्ले की मस्जिद।

औरतों के लिए एतिकाफ़ करना सुन्नत है लेकिन ये ज़रूरी है कि शौहर से इजाज़त ले ले। औरत के लिए मस्जिद में एतिकाफ़ करना मकरूह है। उनको घर में

एतिकाफ़ करना चाहिए। अगर घर में पहले से कोई जगह एतिकाफ़ के लिए तय है तो वहीं एतिकाफ़ करे ये इमाम अबू हनीफ़ा रह0 की राय है क्योंकि इस दौर में औरतों का मस्जिद में एतिकाफ़ करना फ़ितने से ख़ाली नही इसलिए रसूलल्लाह स0अ0 ने औरतों के मस्जिद में नमाज़ अदा करने के मुकाबले में घर में नमाज़ अदा करने को बेहतर क़रार दिया है।

एतिकाफ़ करने वाले को चाहिए कि अपना समय कुरआन पाक की तिलावत, रसूलल्लाह स0अ0 की सीरत (चरित्र), अम्बिया व बुज़ुर्गों के वाक़्यों व हालातों और दीनी किताबों का अध्ययन और उन्ही चीज़ों को पढ़ाना, दीनी किताबों को लिखना या उनको एकत्रित करने इत्यादि में अपना समय लगाएं। एतिकाफ़ की हालत में खुशबू वग़ैरह लगा सकते हैं। एतिकाफ़ के आदाब में ये भी है कि मस्जिद के आदाब का लिहाज़ रखा जाए। मस्जिद में सामान लाकर ख़रीदा बेचा न जाए हां अगर सौदा बाहर हो तो इस तरह के मामले की गुंजाइश है। इबादत समझ कर बिल्कुल ख़ामोश रहना या बेहूदा और नामुनासिब बातें करना भी मकरूह है।

एतिकाफ़ को तोड़ने वाली चीज़ें

बीवी से हमबिस्तरी, मस्जिद के अन्दर हो या बाहर, जानबूझ कर हो या भूल से, दिन में हो या रात में, वीर्य निकले या न निकले, हर हाल में एतिकाफ़ टूट जाएगा। हमबिस्तरी से पहले के मामले यानि छूना या चूमना इत्यादि भी जाएज़ नही मगर उससे एतिकाफ़ नही टूटेगा बल्कि बीवी से बातचीत करना सही है। इसी प्रकार ऐसी बेहोशी जो एक दिन से अधिक हो गयी हो तो एतिकाफ़ टूट जाता है औरत को मासिक धर्म आ गया तो उससे भी एतिकाफ़ टूट जाएगा और उसकी क़ज़ा वाजिब होगी। दिन में जानबूझ कर खा पी लेने से रोज़ा ख़राब हो जाता है और एतिकाफ़ भी टूट जाता है।

मस्जिद से बाहर निकलना

बिना आवश्यकता मस्जिद से बाहर निकल जाने से भी एतिकाफ़ टूट जाता है। इमाम अबू हनीफ़ा रह0 के नज़दीक तो बिना आवश्यकता थोड़ी देर के लिए निकलने से भी एतिकाफ़ ख़राब हो जाता है। लेकिन साहिबैन रह0 के निकट दिन रात के अधिकतर भाग में मस्जिद से बाहर रहने से एतिकाफ़ ख़राब हो जाता है। अल्बत्ता किसी ज़रूरत के लिए बाहर निकला जा सकता है। ये आवश्यकता दो प्रकार की है। स्वाभाविक, शरई : स्वाभाविक आवश्यकता से मुराद पेशाब पाखाना गुस्ल वाजिब हो जाने की सूरत में गुस्ल के लिए निकलना, खाना लाने वाले न हों तो खाने के लिए निकलना इत्यादि शामिल है मगर इन सूरतों में भी आवश्यकता से अधिक नही ठहरना चाहिए इन्ही शरई कामों में उलमा ने हुक़्क़ा को शुमार किया है कि मस्जिद से बाहर जाकर हुक़्क़ा पीकर बदबू मिटाकर मस्जिद में आ जाना चाहिए। यही तरीक़ा उन लोगों को भी अपनाना चाहिए जो सिगरेट पान वग़ैरह के आदी हों। शरई आवश्यकताओं में से ये भी है कि अगर ऐसी मस्जिद में एतिकाफ़ कर रहा है जहां जुमा नही होता है तो जुमा के लिए जामा मस्जिद जाना सही है। बल्कि इसकी रिआयत जरूरी है कि केवल इतनी देर दूसरी मस्जिद में ठहरे कि तहीयतुल मस्जिद पढ़ ले, सुन्नत अदा कर ले फिर खुत्बे से जुमा के बाद की सुन्नतें अदा करने के बाद जल्द से जल्द अपनी मस्जिद में आ जाए देरी मकरूह है। अगर कोई शख़्स जबरन निकाल दे या मस्जिद टूट जाए जिसकी वजह से निकलना पड़े या उस मस्जिद में जान व माल का ख़तरा हो जाए तो उन सभी हालतों में उस मस्जिद के बजाए दूसरी मस्जिद में जाकर एतिकाफ़ कर लेना सही है और उससे एतिकाफ़ में कोई ख़लल नही पड़ेगा लेकिन दूसरी मस्जिद में फ़ौरन बिना देर किये चला जाए इसी प्रकार अगर एतिकाफ़ के बीच मस्जिद से निकल कर अज़ान देने के लिए मीनार पर चढ़ जाए तो इसकी भी इजाज़त है।

एतिकाफ़ की क़ज़ा

अगर एतिकाफ़ वाजिब था और किसी वजह टूट गया तो उसकी क़ज़ा ज़रूरी है। इमाम अबू हनीफ़ा रह0 के नज़दीक मसनून एतिकाफ़ में केवल उस दिन की क़ज़ा करनी होगी जिस दिन का एतिकाफ़ टूट गया जबकि इमाम अबू यूसुफ़ रह0 के निकट पूरे दस दिन की क़ज़ा वाजिब होगी। मशहूर फ़क़ीह अल्लामा हाफ़िज़ इब्ने हुमाम रह0 का रुझान भी इसी तरफ मालूम होता है इसलिए यही अधिक अच्छा तरीक़ा है कि पूरे अश्रा की क़ज़ा की जाए।

न्यायपालिका के शरीअत विरोधी फ़ैसले और मुस्लिम बुद्धिजीवियों की ज़िम्मेदारी

सैय्यद मुहम्मद अमीन हसनी नदवी

केवल एक ही धर्म है जिसके बारे में यक़ीन से यह बात कही जा सकती है कि इन्सानी जीवन में घटने वाली हर घटना में वह इन्सान का मार्गदर्शन करता है और न केवल यह कि मार्गदर्शन करता है बल्कि उसका एक नियम बना देता है जिसमें न किसी का हक़ मरता है और न किसी को किसी से शिकायत का कोई मौक़ा मिलता है। हमारी कोताही यह है कि इस तरह के मामलात में हम इस्लाम के तय किये हुए उसूल व क़ानून से होने वाले लाभ को देशवासियों के सामने स्पष्ट नहीं कर पाते जिसका नतीजा अदालत के उन फ़ैसलों की शक्ल में सामने आता है जो शरीअत के ख़िलाफ़ होते हैं और पूरी क़ौम के लिये एक समस्या खड़ी कर देते हैं जैसा कि 5–अप्रैल को तलाक शुदा औरत के ख़र्च को लेकर अदालत का एक फ़ैसला सामने आया। अदालत के इस तरह के फ़ैसलों से औरतो में पैग़ाम जाता है कि अदालतें उनका हक़ दिलाने के लिये कोशिश करती हैं और जब अदालत के इन फ़ैसलों को मुस्लिम उलमा चैलेंज करते हैं तो औरतों के जहन में यह बात आती है कि यही वे लोग हैं जो औरतों के अधिकारों की बातें तो बहुत करते हैं लेकिन जब अधिकार मिलने की बात आती है तो यही लोग रोड़ा बनते हैं। इस तरह उनके अन्दर उलमा और फ़ुक़्हा से बदज़नी फ़ैलती है जो कभी–कभी विद्रोह की शक्ल अपना लेती है। मीडिया उसका पूरा फ़ायदा उठाकर उलमा पर लोगों के विश्वास को तोड़ने और इस्लामी शरीअत को विरुद्ध षडयन्त्र करने में कामयाब हो जाते हैं। इस तरह की सूरते हाल में हमको बड़ी सूझ–बूझ के साथ यह लड़ाई लड़नी होगी और औरतों को जो अधिकार इस्लाम ने दिये हैं उन अधिकारों को भी पूरी तरह स्पष्ट करना होगा।

1985 में भी इस तरह के मसले सामने आये थे और उस समय मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड के ज़िम्मेदारों ने बड़ी सूझ–बूझ के साथ यह लड़ाई लड़ी थी। हज़रत मौलाना अबुल हसन अली हसनी नदवी ने बोर्ड के ज़िम्मेदारों के साथ इसका अभियान चलाया था। मौलाना ने अध्यक्ष के तौर पर अपने भाषण में इस फ़ैसले के नकारात्मक प्रभाव को स्पष्ट करते हुए और संबंधित औरत के नान व नफ़क़ा के बदल की बाज़ शक्लों को पेश करते हुए कहा था:

"तलाक़ शुदा औरत को इद्दत के बाद भूतपूर्व पति से क़ानूनी तौर पर मुस्तक़िल गुज़ारा दिलवाना जिसको मेनटेनेंस के शब्द से परिभाषित किया जाता है बौद्धिक रूप से व शरीअत के एतबार से भी किसी तरह ठीक नहीं है। शरीअत के अनुसार तो इसलिए नहीं कि कुरआनी आदेशों और उम्मत के अमल के मुताबिक़ इसकी गुंजाइश नही। अक़ली तौर पर इसलिए नहीं कि फिर इसके बाद मुस्लिम माशरे में भी निर्दयता और बेदर्दी की वे घटनाएं होंगी जो देश के एक बहुत बड़े वर्ग में घटित हो रही हैं और नव ब्याही औरतें वांछित जहेज़ न लाने पर जलायी जा रही हैं और उनसे किसी तरह पीछा छुड़ाया जा रहा है और फिर तलाक़शुदा औरत के गुज़ारा भत्ते से पीछा छुड़ाने के लिये भी इस तरह की घटनाएं घटित हुई हैं। तलाक़ शुदा औरत की इस मुस्तक़िल क़ानूनी शक्ल (गुज़ारे को छोड़कर) को शरीअत के बताए हुए इन व्यवस्थाओं को ज़िन्दा और क़ायम करना पड़ेगा, जिनकी शरीअत ने ताकीद की है और जो इस्लामी शरीअत की बरकात में से हैं। जैसे औरत को माता–पिता और दूसरे वारिसीन की विरासत से शरई हिस्सा दिलाना जो विभिन्न परिस्थितियों में

वाजिब और बहुत से ख़ानदानों और समाज में अर्से से रुका हुआ है। तलाक़शुदा औरत के क़रीबी रिश्तेदारों औलाद, भाईयों और अगर माता–पिता ज़िन्दा हैं तो उनाके इसको साथ हमदर्दी व सुहानुभूति और सिलारहमी को बढ़ावा देना उसकी गुज़ारे का मुनासिब बन्दोबस्त करनावा। अगर दूसरे निकाह की उम्र और हालात हैं तो इसकी कराने में सहायता करना तथा इस्लामी राजकोष की स्थापना जिससे लाचार और ज़रूरतमन्द को आवश्यक आवश्यकताओं और जीवन यापन के साधन उपलब्ध कराये जाए। इससे बढ़कर पूरे मुस्लिम समाज में हमदर्दी, सदाचार, त्याग व सखावत का जज़्बा पैदा करना जो हज़ार बीमारियों का इलाज है और हज़ार मुश्किलों व समस्याओं का हल है और जो मुस्लिम समाज को क़ानून बनाने से रोकता है और शुरूआती ज़माने और इस्लाम के आरम्भिक इतिहास में उसके प्रकाशित उदाहरण हैं और इसका ज़िन्दा सुबूत मिलता है। यह हैं करने के वह काम जिनको जल्द से जल्द शुरू होना चाहिये और जो इस्लाम की रूह, स्वभाव और अल्लाह की शरीअत और आसमानी शिक्षाओं से पूरी तरह समानता रखते हैं और इन्हीं में शरीअत का अस्ल सुरक्षा और इस मुल्क व ज़माने में मुसलमानों के साहब–ए–शरीअत व चरित्रवान और श्रेष्ठ, सदृढ़, सम्मानित, ख़ुद्दार और ग़ैरतमन्द समुदाय की हैसियत से बाक़ी रखने की ज़मानत है।''

शरीअत की व्याख्या वे लोग करें जो शरीअत के विभिन्न भागों से पूरी तरह से परिचित हों लेकिन क्या कहा जाए शरीअत पर भरोसा हम मुसलमानों को ही नहीं। यह फ़ैसले जो शरीअत के विरोध में होते हैं इसमें एक बड़ा दखल हमारा भी है। ग़ौर कीजिए, दारुल कज़ा में कितने मुसलमान अपने मसले हल कराते हैं?उलमा से कितने लोग मसला पूछते हैं?मदरसों में जो फ़िक़्ही समस्याओं से ताल्लुक रखते हैं उनके पास जाकर कितने लोग अपने मुक़द्दमे पेश करते हैं?आल इण्डिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड़ ने दारुल कज़ा की स्थापना का अभियान शुरू किया था लेकिन अफ़सोस कि इस्लामी अदालत में इक्का दुक्का ही मुक़द्दमें आते हैं और हज़ारों मुक़द्दमें ग़ैर मुस्लिमों की अदालत में जाते हैं। फ़ैसले हम ख़ुद अपने ख़िलाफ़ करवाते हैं। ग़ैर मुस्लिम जजेज़ के पास हम ख़ुद जाते हैं। होना तो यह चाहिये कि कोई भी फ़ैसला हमारा दारुल कज़ा में हो। हमारा फ़ैसला कुरआन व हदीस से हो। कुरआन मजीद में अल्लाह तआला ने साफ़–साफ़ इरशाद फ़रमा दिया है:

"ऐ नबी! आपके रब की क़सम! वे तो मोमिन हो ही नहीं सकते, जब तक अपने आपसी झगड़ों में आपको हकम न बना लें, तथा आपके फ़ैसले से अपने दिल में कोई तंगी महसूस न करें और पूरी तरह से स्वीकार न कर लें। (सूरह निसाः 65)

इससे यह बात मालूम होती है कि मुसलमान चाहे किसी इलाक़े में आबाद हों, उन पर यह बात वाजिब है कि शरई अदालत की स्थापना करें कि उसके बिना अपने झगड़ों में अल्लाह व रसूल (स0अ0) के फ़ैसले की तरफ़ लौटना संभव नहीं।

मुसलमानों को संकल्प लेना होगा कि उनका कोई भी काम शरीअत के विरोध का कारण न बन जाए वरना उनका ईमान ख़तरे में है। शरीअत पर अमल करना हम पर वाजिब है। शादी के जो ग़ैर शरई मसले हैं उनको अपने समाज से ख़त्म करना होगा। जहेज़ का मसला हो या और पारिवारिक झगड़े, इन सब में हम शरीअत की तरफ़ लौटेंगे और शरीअत जो फ़ैसला कर देगी उसको स्वीकार करेंगे।

किसी के यहां इफ़्तार करें तो यह दुआ पढ़ें:

"اَفْطَرَ عِنْدَكُمُ الصائِمُوْنَ وَاَكَلَ طَعَامَكُمُ الْاَبْرَارُ

وَصَلتْ عَلَيْكُمُ الْمَلَائِكَةُ"

शुक्र-ए-इलाही का जज़्बा

मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी

हज़रत मुग़ीरा बिन शुएबा से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (स0अ0) ने इतनी तवील नमाज़ पढ़ी कि पांव मुबारक में वरम आ गया। आप (स0अ0) से अर्ज़ किया गया कि आप क्यों इतनी तकलीफ़ उठाते हैं। जबकि अल्लाह तआला ने आपके अगले पिछले गुनाह माफ़ कर दिये हैं। आप (स0अ0) ने फ़रमाया कि क्या मैं शुक्रगुज़ार बन्दा न बनूं।

फ़ायदाः शुक्र का फ़हूम है इज़हार–ए–एहसानमंदी। किसी का एहसान मानना, शिकायत न करना। इस्तलाह में दिल, ज़बान व अमल से अल्लाह तआला की नेमतों का इज़हार शुक्र है। दरअस्ल शुक्र का जज़्बा इन्सानियत की मांग है। मुहब्बत की आवाज़ है और खुशहाली का नगीना है। अल्लाह तआला के नज़दीक शुक्र की बड़ी क़द्रदानी है। शुक्र की ख़ासियत यह है कि उससे नेमतों में बढ़ोत्तरी होती है और नाशुक्री पर नेमतों के छिन जाने का ख़तरा होता है। इरशादे इलाही हैः अगर तुमने एहसान माना तो हम तुम्हें और देंगे और अगर तुमने नाशुक्री की तो मेरी मार बड़ी ही सख़्त है।

मज़कूरा हदीस से मालूम हुआ कि आप (स0अ0) का शुक्र का जज़्बा नेमतों के एतराफ़ का मज़हर था। आपकी ग़ैर मामूली मेहनतें गुनाहों के डर से नहीं बल्कि एक शुक्रगुज़ार बन्दा बनने के लिये थीं। कुरआन मजीद में तमाम अफ़राद उम्मत के अन्दर इसी जज़्बा–ए–शुक्र को पैदा करने की जगह–जगह पर तलक़ीन है। सूरह मोमिनून में हैः और वही ज़ात है जिसने तुम्हारे कान और आंखे और दिल बनाये। कब ही तुम एहसान मानते हो। इन्सानी शरीर के अंगों में कान, आंख और दिन का मरकज़ी किरदार है। अगर उनकी हिफ़ाज़त की जाये और खुदा की अमानत समझकर उनको इस्तेमाल किया जाये तो यह भी शुक्र है। लेकिन आज सबसे ज़्यादा इन्हीं आज़ा का इन्सान ग़लत इस्तेमाल करता है। रोज़ाना की ज़िन्दगी में कानों से जितनी ग़लत बातें सुनी जाती हैं, उनके मुक़ाबले में भलाई की बातों को सुनने का पहलू बहुत कम है। इसी तरह आंख को जितना ग़लत चीज़ों के लिये इस्तेमाल किया जाता है उसके मुक़ाबले में अच्छी चीज़ों के लिये उसका इस्तेमाल नहीं किया जाता है और दिल में जिस क़द्र शैतानी वसवसे और मक्कारी और फ़रेब रहता है उसके मुक़ाबले भलाई, हमदर्दी और अल्लाह की इबादत का जज़्बा एक फ़ीसद भी नहीं रहता है।

कुरआन मजीद की रौ से इन्सान जितना ज़्यादा शुक्र के जज़्बे से आरी होता जायेगा उतना ही शैतानी वसवसों और शैतानी हमलों का शिकार होता जायेगा। जिस वक़्त शैतान ने अल्लाह तआला से कहा था कि मैं तेरे बन्दों को हर तरह से गुमराह करने की कोशिश करूंगा। उस वक़्त अल्लाह ने यही कहा था कि और तू उनमें अक्सर को शुक्रगुज़ार न पायेगा। इससे पता चला कि शैतानी पंजों से निकलने का एक आसान रास्ता शुक्र के जज़्बे को बढ़ावा देना भी है जिसकी अमली मिसाल नबी करीम (स0अ0) और सहाबा किराम की ज़िन्दगी से मिलती है।

शुक्र के तीन स्तर हैं। पहला दिली यानि इन्सान अपने दिल की गहराइयों से अल्लाह की नेमतों का एतराफ़ करे।

दूसरा ज़बानी यानि नेमतों के बयान करने के तौर पर अल्लाह तआला के एहसानात का दूसरों के सामने तज़किरा करे।

अमली यानि इन्सान के शुक्र करने के असरात उसके आमाल से भी ज़ाहिर हो रहे हों।

ग़ौर किया जाये तो शुक्र के यह तीनों दरजे एक दूसरे के पूरक हैं। इसलिए कि अगर इन्सान दिल से अल्लाह तआला की नेमतों का एतराफ़ करेगा तो उसका दिल अल्लाह की मुहब्बत से भर जायेगा। जिसके नतीजे में वह हर एक के सामने अपनी ज़बान से नेमतों का इज़हार और अल्लाह तआला की तारीफ़ बयान करेगा और इसका नतीजा यह होगा कि वह ज़्यादा से ज़्यादा नेक काम करने की कोशिश करेगा, ताकि अल्लाह तआला की नेमतों का मुस्तहिक़ बन सके। इस तश्रीह को सामने रखते हुए ऊपर दी गयी हदीस पर ग़ौर किया जाये तो मालूम होगा कि आप (स0अ0) की ग़ैर मामूली इबादत का भी यही राज़ था। यहां तक कि आप (स0अ0) के पैर मुबारक पर वरम आ जाता था।

इबादत में संतुलन आवश्यक है!

मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी

अल्लाह तआला का इरशाद है: "हमने इन्सानों और जिनों को इबादत के लिये पैदा किया।" (सूरह ज़ारियात) इस इबादत का संबंध इन्सान के जिस्म से भी है और उसकी रूह से भी है और इस्लाम ने जिस तरह इन्सान की जीवन के हर भाग में संतुलन की शिक्षा दी है उसी प्रकार इबादत में भी संतुलन को आवश्यक घोषित किया गया है और इसमें किसी भी प्रकार की कमी व अधिकता को पसन्द नहीं किया गया। इसलिये बन्दा जब इबादत में लीन हो जाता है और शरीर की आवश्यकताओं को नज़रअन्दाज़ करके अपनी रूह पर सख़्तियां करता है, उसे भिन्न–भिन्न प्रकार की बन्दिशों और पाबन्दियों में जकड़ने का प्रयास करता है तो धीरे–धीरे वो समाज से कटता जाता है और अपनी एक अलग दुनिया में पहुंच जाता है जिसे "सन्यास" कहा जाता है और इस्लाम ने सन्यास की कड़ी निंदा की है। इबादत का दूसरा पहलू वो है जिसमें इन्सान बहुत ही सुस्ती, अनिच्छा और इबादतों में अरुचि प्रकट करता है, जिसके नतीजे में बेदीनी और गुमराही का पैदा होना लाज़मी हो जाता है, ये दोनों सूरतें इस्लामी शिक्षा और इबादत की रूह के बिल्कुल ख़िलाफ़ हैं।

इबादत से इन्सान की आत्मिक आवश्यकता की पूर्ति होती है जबकि शरीर के लिये भौतिक साधनों को अपनाना पड़ता है और इबादत में अधिकता करने से शारीरिक आवश्यकतांए प्रभावित होती हैं। इसमें कोई शक नहीं कि अल्लाह के रसूल स0अ0 इतनी ज़्यादा इबादत किया करते थे कि आप स0अ0 के पांव में सूजन आ जाती थी। उम्मत को भी आप स0अ0 ने मुजाहिदों की शिक्षा दी है। लेकिन इसके साथ ही आप स0अ0 ने शारीरिक आवश्यकताओं को भी पूरा करने पर ज़ोर दिया है और इबादत में खुद को थकाने और बहुत अधिक संघर्ष करने की इस हद तक आज्ञा दी है जब तक कि शारीरिक आवश्यकतांए प्रभावित न हों।

आप स0अ0 की इबादतें और अल्लाह की बारगाह में आप स0अ0 की बन्दगी व अत्यधिक लीनता को देखकर तीन सहाबा किराम रज़ि0 बेहद प्रभावित हुए और उन्होने सोचा कि अल्लाह के रसूल स0अ0 जो कि बख़्शे बख़्शाए हैं, वो इतनी ज्यादा मुजाहिदे करते है और इतनी देर तक इबादत में लीन रहते हैं तो हम जैसों को कितनी इबादत करनी चाहिये! इसलिये उनमें से एक ने रात भर न सोने और लगातार नफ़िलें पढ़ने का संकल्प किया। दूसरे ने अपना पूरा जीवन रोज़े की हालत में गुज़ारने का फ़ैसला किया और तीसरे ने पूरी ज़िन्दगी शादी न करने और औरत से दूर रहने का दृढ़ निश्चय किया। अल्लाह के रसूल स0अ0 को जब इसकी सूचना मिली तो आपने इसे नापसन्द किया और फ़रमाया कि मैं तुमसे ज़्यादा अल्लाह से डरने वाला और उसका तक़वा रखने वाला हूं इसके बावजूद भी मैं आवश्यक आवश्यकताओं को पूरा करता हूं, मैं सोता भी हूं, खाता पीता भी हूं, और शादी भी करता हूं। ऐसे ही एक अवसर पर आप स0अ0 ने फ़रमाया: "तुम पर तुम्हारे रब के साथ–साथ तुम्हारे जिस्म व जान और तुम्हारे घरवालों के भी हक़ हैं, बस हर एक को उसका पूरा हक़ दो।" (हदीस)

इबादत में संतुलन का एक अहम उद्देश्य ये भी है कि इस्लाम इस दृष्टिकोण को नकारता है कि इबादत के अर्थ में केवल रोज़ा, नमाज़ और हज इत्यादि ही आते हैं या खुद पर सख़्ती करने, दूसरों की तरह अपने शरीर को कष्ट देने या खुद को तकलीफ़ देने वाले कामों में लगाने से अल्लाह की रज़ा हासिल होती है और ज़्यादा से ज़्यादा सवाब मिलता है। हालांकि इस्लाम के नज़दीक अज्र व सवाब का दायरा इतना बड़ा है कि ज़िन्दगी का कोई भी हिस्सा अज्र व सवाब से ख़ाली नहीं। ज़िन्दगी के वो बहुत सारे काम दुनिया की ज़रूरत समझ कर करते हैं इस्लाम की निगाह में वो काम भी अज्र व सवाब के मुस्तहक़ हैं। बस ज़रूरी है कि वो सारे काम शरई हिदायत के अनुसार हों। फिर एक मुसलमान अपने सोने–जागने, खाने–पीने, चलने–फिरने, व्यापार व खेती–बाड़ी यहां तक कि नित्यक्रिया करने पर भी अज्र व सवाब का मुस्तहिक़

होता है। एक अवसर पर हज़रत मआज़ बिन जबल ने कहा था: "मुझे अपने सोने में भी इसी तरह के अज्र व सवाब की उम्मीद है जिस तरह मुझे जागते हुए इबादत करने में होती है।" हदीसों में यहां तक कहा गया है कि बीवी के मुंह में मुहब्बत से एक निवाला रखना भी सवाब का काम है। यहां तक कि बीवी से अपनी जिन्सी ख़्वाहिश पूरी करने पर भी अज्र व सवाब का वादा किया गया है। सहाबा किराम रज़ि0 ने आप स0अ0 से पूछा कि कोई व्यक्ति अपनी लैंगिक इच्छाओं की पूर्ति करता है तो उस पर उसे सवाब क्यों मिलेगा? आप स0अ0 ने फ़रमाया कि अगर वो व्यक्ति नाजाएज़ तरीक़े से अपनी इच्छाओं की पूर्ति करता तो क्या गुनहगार न होता?यहां उसने जाएज़ तरीक़े से अपनी इच्छा पूरी की जिस पर उसको सवाब मिलेगा।

इबादत में संतुलन अपनाने की एक ख़ास वजह ये भी है कि इस्लाम की नज़र में वो कार्य प्रशंसा योग्य है जिसमें दृढ़ता व मज़बूती हो। आप स0अ0 ने इरशाद फ़रमाया: "अल्लाह के नज़दीक पसन्दीदा काम वो है जिसमें पाबन्दी हो चाहे वो थोड़ा ही क्यों न हो।" (हदीस) इबादत में पाबन्दी और दृढ़ता उसी समय संभव हो सकेगी जबकि उसमें क्षमता और दृढ़ता दोनो आधार से संतुलन का ध्यान रखा जायेगा यानि इन्सान का अमल उसकी शारीरिक क्षमता के अनुसार दृढ़ व मज़बूत होगा वरना ज़िन्दगी की उलझनें, रोज़मर्रा के मसले और दूसरी भागदौड़ कुछ ऐसी है कि इबादत की एक बड़ी मात्रा की पाबन्दी करना मुश्किल है। इन्सान कभी जोश व जज़्बे में किसी दिन खूब इबादत करता है, अपने शरीर को थकाता है, लेकिन दूसरे दिन पहले जैसी सेहत और समय का मिलना यक़ीनी नहीं है। हदीसों में संतुलन की जो शिक्षा दी गयी है वो इसीलिये है कि एक मुसलमान बन्दा अपने रब की जो भी इबादत करे पूरी एकाग्रता से करे और पूरी पाबन्दी के साथ करे।

अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त ने रमज़ानुल मुबारक की नेमत इसी असंतुलन को दूर करने के लिये दी है। साल भर बन्दा अपने रब से ग़ाफ़िल रहता है, इबादतों में कोताही करता है और नफ़्स की ख़्वाहिशों के पीछे भागता रहता है। इस महीने में उसे खुद को संवारने और अपने ईमान को ताज़ा करने का मौक़ा मिलता है, इसीलिये सरकश शैतान क़ैद कर दिये जाते हैं, इबादतों पर अज्र व सवाब कई–कई गुना बढ़ा दिया जाता है, और अल्लाह की बन्दगी का एक आम समा बांध दिया जाता है। बस थोड़ी सी कोशिश है बन्दा वो मर्तबे हासिल कर सकता है जो साल भर भी मुमकिन न हो सका था। लेकिन अफ़सोस की बात है कि इतनी बड़ी नेमत मिलने के बावजूद मुसलमानों की एक बहुत बड़ी संख्या उसकी नाक़द्री करती है, इस महीने के आने और जाने से उनकी ज़िन्दगियों पर कोई असर नहीं पड़ता, ये बड़े ही ख़तरे की बात है, और खुदा के गज़ब का कारण भी।

मुसलमानों की एक संख्या ऐसी भी होती है जो इस महीने में इबादत की कुछ चीज़ों में बहुत अधिकता कर देती है, इसमें कोई शक नहीं कि इस महीने में जितना हो सके इबादत करनी चाहिये, लेकिन उसका भी एक क्रम होना चाहिये जिसमें शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी आवश्यक है।

आजकल मुसलमानों में एक आम चलन रमज़ान में तीन चार दिन में ख़त्म कुरआन का भी चल पड़ा है। अलग–अलग मस्जिदों में तीन चार दिन में कुरआन मजीद ख़त्म हो जाता है, ये तरीक़ा इस्लामी रूह और इबादत में संतुलन के विपरीत है। इसकी इजाज़त केवल उस समय दी जा सकती है जब किसी को एकाग्रता के साथ किसी एक जगह तरावीह पढ़ने का मौक़ा न मिलता हो, और उसकी जिस्मानी सेहत इस लायक़ हो कि वो तीन चार दिन में पूरा कुरआन सुन सुके वो भी इस तरह से कि जो कुछ पढ़ा जाये वो पूरी तरह समझ में भी आये। आम तौर पर तीन चार दिन में ख़त्मे कुरआन एक फ़ैशन बन चुका है, और देखा गया है कि तीन चार दिन में कुरआन पूरा करने वाले बाक़ी दिन की तरावीह से भी खुद को अलग समझने लगते हैं, जबकि तरावीह पूरे महीने सुन्नते मुअक़्क़िदा है और कुरआन मजीद का ख़त्म करना एक अलग सुन्नत है। इस लिये इस सिलसिले में जो कोताहियां और असंतुलन हैं उनको दूर करने की आवश्यकता है, ताकि रमज़ानुल मुबारक का पूरा हक़ अदा हो सके और उसकी नेमतों और बरकतों से हम पूरी तरह फ़ायदा उठा सकें।

जबान की नेकियां

अच्छी बात का हुक्म देना बुरी बात से रोकना

अल्लाह तबारक व तआला ने जब हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम और हज़रत हारून अलैहिस्सलाम को फ़िरऔन जैसे काफ़िर और ख़ुदा दुश्मन के पास दावत इलल्लाह के लिये भेजा तो फ़रमाया:

"तुम दोनों उससे नर्म बात करना।"

अम्र बिल मारूफ़ में जो लोग कोताही करते हैं, बुराई होते देखते हैं, मगर उसे रोकते नहीं, अच्छी बात कहने के वक़्त भी अच्छी बात नहीं कहते, इस्लाम व ईमान की दावत नहीं देते और अपनी ज़बान को बन्द रखते हैं, तो वे अल्लाह और अल्लाह के रसूल स०अ० की नाराज़गी को मोल लेते हैं और अपनी ज़बान का हक़ अदा नहीं करते, ऐसे लोगों के लिये बड़ी वईद आयी है, हदीस शरीफ़ में यहां तक आता है:

"जो शख़्स तुम लोगों में से कोई बुराई देखे तो अपने हाथ से रोक दे और अगर उसकी ताक़त नहीं रखता है तो अपनी ज़बान से रोके और अगर उसकी भी क़ूव्वत न हो तो अपने दिल में बुरा जाने, और यह ईमान की बड़ी कमज़ोरी है।"

क़ौल व फ़ेल में सदाक़त पैदा करने वाले को उसका लिहाज़ रखना बहुत ज़रूरी है कि वह कहने से पहले ख़ुद उस पर अमल करे।

कुरआन शरीफ़ में आता है:

"ऐ ईमान वालो! वह बात क्यों कहते हो जिस पर तुम ख़ुद अमल नहीं करते। अल्लाह के नज़दीक यह बात बड़ी गुस्से और नाराज़गी की है कि तुम वह कहो जो ख़ुद नहीं करते।"

बाज़ लोग तब्लीग़ व दावत का काम नहीं करते कि वह ख़ुद अमल पैरा नहीं होते, न तो ख़ुद अमल करें न तो दूसरो से कहें, गोया दो गुनाहों से मुरतकिब होते हैं। पहला तो ख़ुद नेक काम न करना, दूसरा अपनी ज़बान से उस ज़रूरी काम न अंजाम देना।

बहुत से लोगों का यह ख़्याल होता है कि ख़ुद तो नेक होते हैं, अच्छे काम करते हैं, नमाज़ी होते हैं, रोज़ा रखते हैं, सच बोलते हैं, मगर दूसरों को नमाज़, रोज़े की नसीहत नहीं करते, न सच के बारे में कहते हैं, अपना अमल अपनी निजात के लिये काफ़ी समझते हैं, यह भी बड़ी नादानी की बात है कि ख़ुद तो आग से बचने की कोशिश करें और दूसरों को आग में जलने दें। इसकी मिसाल ऐसी है कि एक नाबीना और एक आंखों वाला आदमी कुवें पर पहुंचा, और आंखों वाला सामने कुएं को देखकर रुक गया, बैठ गया और गिरने से बच गया। थोड़ी देर में अंधा आदमी आ गया और कुवें में गिरने लगा, आंखों वाला आदमी ख़ामोश रहा और नाबीना को गिरते, हलाक होते देखता रहा, न हाथ पकड़ कर घसीटा, न ज़बान से कुछ कहा, बस दिल में बुरा जानता रहा, उसके बुरा जानने से गिरने वाले को क्या फ़ायदा पहुंचा।

बस यही हाल उस नेक शख़्स का भी है कि ख़ुद तो दोज़ख़ से बचने का सामान करता रहा, और दूसरे को दोज़ख़ का मुस्तहिक़ बनते देखता रहा, मगर उन कामों से न रोका, जिनके करने से वह शख़्स दोज़ख़ में जा रहा है।

मौलाना मुहम्मद सानी हसनी रह०

R.N.I. No.
UPHIN/2009/30527

Monthly
ARAFAT KIRAN
Raebareli

Postal Reg. No.
RBL/NP -19

Issue: 05-06 MAY-JUNE 2018 VOLUME: 10

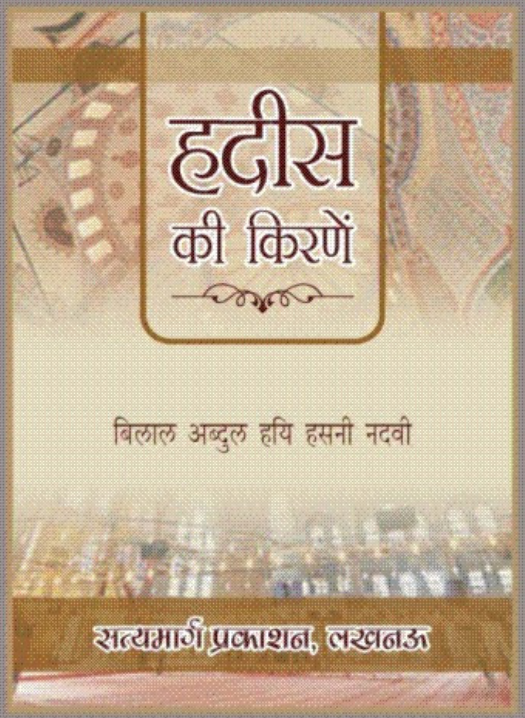

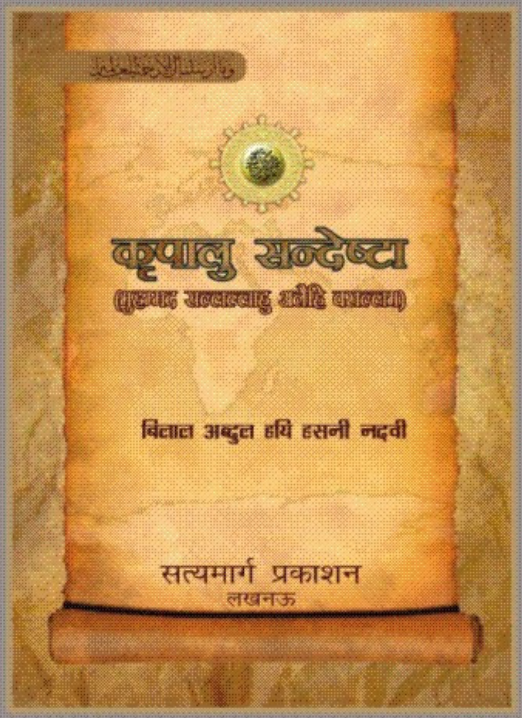

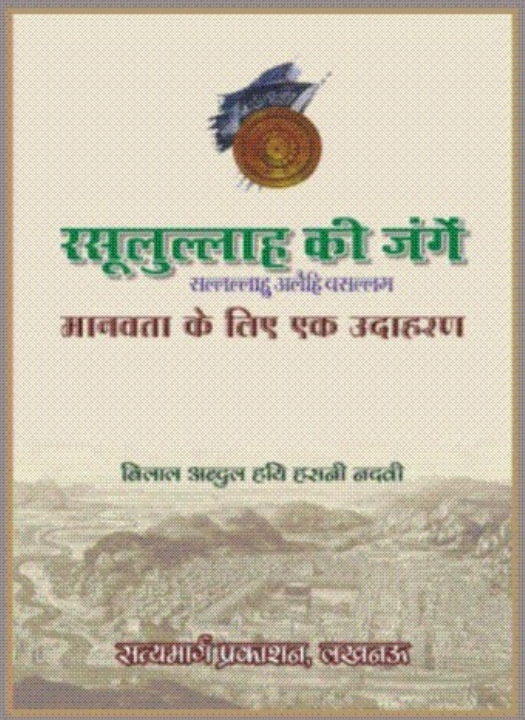

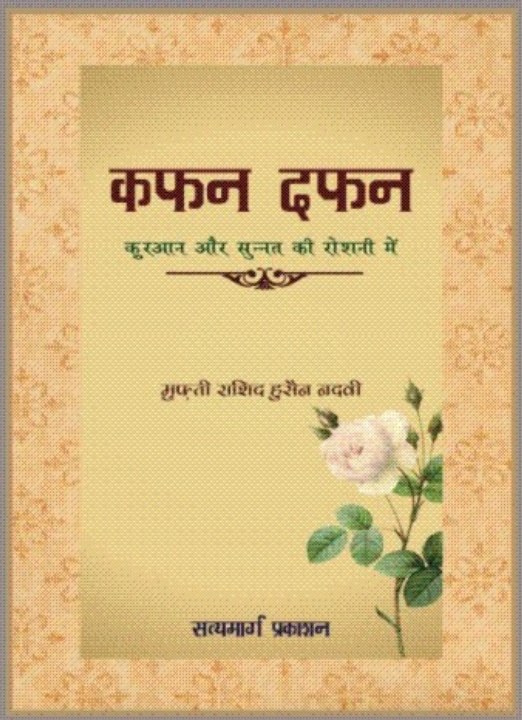

Editor: Bilal Abdul Hai Hasani Nadwi
MARKAZUL IMAM ABIL HASAN AL-NADWI
Dare Arafat, Takiya Kalan, Raebareli, U.P.
Mobile:9565271812
E-Mail: markazulimam@gmail.com
www.abulhasanalinadwi.org

Printed & Published by: Mohammad Hasan Nadwi
On Behalf of: Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi
Printed at S.A. Offset Printers, Masjid ke peeche,Phatak Abdullah Khan, Sabzi Mandi, Station Road, Raebareli, U.P.